संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

सिक्किम विश्वविद्यालय

में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि की आंशिक परिपूर्ति के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

विनीता देवी

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

फरवरी – 2020

संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

अनुसंधित्सु

विनीता देवी

पं. सं. 18/M.Phil/HND/01, दिनांक 24/05/2019

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

शोध- निर्देशक

डॉ. दिनेश साहू

अनुसंधित्सु

विनीता देवी

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध

अनुसंधित्सु

विनीता देवी

पं. सं. 18/M.Phil/HND/01, दिनांक 24/05/2019

द्वारा

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, के हिंदी विभाग में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

दिनांक : .....

घोषणा

मैं विनीता देवी (पंजीकरण संख्या 18/M.Phil/HND/01, दिनांक 24/05/2019) एतद्द्वारा घोषित करती हूँ कि "संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध" लघु शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान नहीं की गई है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

इसे सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के सम्मुख हिंदी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

विभागाध्यक्ष (प्रभारी)	**शोध-निर्देशक**	**अनुसंधित्सु**
(डॉ. दिनेश साहू)	**(डॉ. दिनेश साहू)**	**(विनीता देवी)**

दिनांक : .....

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि विनीता देवी (पंजीकरण संख्या 18/M.Phil/HND/01, दिनांक 24/05/2019) द्वारा सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत "संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध" विषयक लघु शोध-प्रबंध उनके शोधकार्य का परिणाम है। जहाँ तक मेरी जानकारी है इस विषय के अंतर्गत किसी भी विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी संस्था में किसी भी उपाधि हेतु अद्यावधि कोई शोध-प्रबंध प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं इस लघु शोध-प्रबंध को सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति देता हूँ।

शोध- निर्देशक

(डॉ. दिनेश साहू)
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन **i-xi**

प्रथम अध्याय : शोध-परिचय **1-7**

1.1. शोध का शीर्षक

1.2. शोध का परिचय

1.3. शोध की समस्या

1.4. शोधकार्य का उद्देश्य

1.5. पूर्व शोधकार्यो की समीक्षा

1.6. शोध-प्रविधि

1.6.1 अध्ययन विश्लेषण का सैद्धांतिक आधार

1.6.2. सामग्री संकलन विधि

1.7. शोध का औचित्य एवं महत्व

1.8. शोध की सीमा

1.9. शोध का प्रयोजन

1.10. शोध कार्य का ढाँचा

द्वितीय अध्याय : संजीव : व्यक्तित्व एवं रचना कर्म और

यथार्थबोध : अवधारणा एवं स्वरूप **8-45**

2.1. व्यक्तित्व एवं रचना कर्म

2.1.1. व्यक्तित्त्व : जन्म, बचपन, पारिवारिक जीवन, शिक्षा-दीक्षा,

नौकरी, वैवाहिक जीवन साहित्यिक परिवेश, पुरस्कार

2.1.2. रचना कर्म : उपन्यास, कहानी, नाटक, यात्रा-साहित्य, कविता

2.2. यथार्थबोध: अवधारणा एवं स्वरूप

2.2.1. यथार्थ के विविध प्रकार : सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक

मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक

2.2.2. यथार्थ और यथार्थवाद का संबंध

2.2.3. यथार्थ और साहित्य का संबंध

2.2.4. यथार्थबोध: मानव-जीवन के विविध सन्दर्भ

तृतीय अध्याय : 'फाँस' उपन्यास में अभियक्त सामाजिक यथार्थ-बोध 46-74

3.1. स्त्री जीवन

3.2. शिक्षा एवं रोजगार की समस्या

3.3. जाति-व्यवस्था

3.4. धार्मिक संघर्ष

3.5. जनमानस पर उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव

चतुर्थ अध्याय : 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन का यथार्थ 75-105

4.1. कृषि नीति

4.2. खेती के लिए यंत्रीकरण का दुष्प्रभाव

4.3. बढ़ता बाजारवाद और मूल्यों में गिरावट

4.4. किसान जीवन पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव

4.5. किसान-आत्महत्या

पंचम अध्याय : 'फाँस' उपन्यास की भाषा-शैली **106-120**

5.1. भाषा :

5.1.1. कथ्यगत भाषा

5.1.2. काव्यगत भाषा

5.2. शैली :

5.2.1. संवादात्मक शैली

5.2.2. व्याख्यात्मक शैली

5.2.3. आत्मलाप शैली

5.2.4. वर्णनात्मक शैली

उपसंहार **121-130**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **131-135**

प्राक्कथन

यथार्थ से अभिप्राय समाज की यथास्थिति का चित्रण करना, दूसरे शब्दों, में समाज जैसा हो वैसा ही उसका यथार्थ चित्रण किया जाये। अर्थात सामाजिक विषमताओं, पिछड़े वर्ग पर होने वाले अन्याय-अत्याचार, शोषित लोगों की वेदना, भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास, धार्मिक आडंबर, गरीबी, बेकारी तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रांत आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं से संत्रस्त समाज का यथार्थ चित्रण करना है। संक्षेप में समाज की विविध परिस्थितियों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ है।

संसार का सबसे बड़ा सच है कि कपड़े के भीतर हर आदमी नंगा होता है लेकिन बिना कपड़े के रास्ते से जाना सभ्यता और संस्कृति का लक्षण नहीं माना जा सकता। साहित्य के क्षेत्र में आदर्श और यथार्थ, दोनों के अंकन को स्थान मिला है। संजीव ने बीच का रास्ता अपनाया है, इसे नकारा नहीं जा सकता। उनके साहित्य में ऐसा समाज प्रस्तुत है जो न तो खूबसूरत वस्त्र और आभूषणों से लदा हुआ है और न नंग धड़ंग रूप से रास्ते से जाता है। उनके साहित्य में ऐसा समाज प्रस्तुत है जिसके कटु सच को बिना किसी लिहाज के अवश्य अंकित किया है लेकिन पाठक उसकी नंगी तस्वीर देखकर नाक सिकुड़ता हो, मुँह मोड़ता हो, तथा भौहें टेढ़ी करता हो ऐसी स्थिति नहीं आती। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि लेखक ने समाज को, उसकी गंदी देह को जान-बुझकर आदर्श के वस्त्र से ढक लिया हो। आवश्यकता के अनुरूप उसकी देह पर वस्त्र रखकर जितना उसे अधनंगा और बेपर्दा करना था, लेखक संजीव ने यह अवश्य किया है।

साहित्य मनुष्य के भावों-विचारों एवं क्रिया-कलापों को अभिव्यक्त करता है। यह मनुष्य का सर्वोतम सृजन है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को हम साहित्य के माध्यम से समझ सकते हैं। उपन्यास का महत्त्व इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। गद्य साहित्य में भी कई प्रकार की विधाएँ हैं। जैसे- कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, निबन्ध आदि। इनमें से कहानी और उपन्यास एक प्रकार से नामांकित और रचना की दृष्टि से श्रेष्ठ गद्य विद्या है। वर्तमान में उपन्यास एक सशक्त विधा के रूप में सामाजिक एवं

सांस्कृतिक चेतना लाने के लिए कार्यरत है। उपन्यास में मानव जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। उपन्यास जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

जिस देश में पिछले एक-डेढ़ दशक में तीन लाख किसानों ने आत्महत्या की हो, जहाँ आत्महत्या की दर 2014 में औसतन प्रतिदिन 52 हो गई हो, वहां उस विषय पर चहुँओर चुप्पी एक भयावह भविष्य और खतरनाक आर्थिक-राजनीतिक की ओर इशारा करता है। सृजनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न उपन्यासकार संजीव के उपन्यास साहित्य में संस्कृति, यथार्थ, आदिवासी जीवन विज्ञान उद्भुत मानसिकता का संमिश्रण देखने को मिलता है। उन्होंने अपने सृजन और चिन्तन से इस बात को महसूस किया है कि शोषक तथा अमीर वर्ग हर जगह गरीब वर्ग पर हाबी था, और अभी वह अपना दबदबा समाज में बनाएं हुए हैं चाहे देश को आजाद हुए 68 वर्ष बीत चुके हैं। लेखक ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज की विसंगतियों, विकृतियों तथा कटु यथार्थ को व्यापक धरातल पर निकट से देखने का प्रयास किया है। संजीव का लेखन इन्हीं अनुभवों से प्रेरित है। उन्होंनें गरीब वर्ग, मध्यम वर्ग, किसान वर्ग के अभावों, आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं का यथार्थ के धरातल पर महसूस करते हुए कागज पर उकेर कर अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है।

संजीव का 'फाँस' उपन्यास किसानों के 'फाँस' की स्थितियों को पाठकों के सामने रखकर उन्हें 'फाँस' से मुक्ति की राह दिखाने का प्रयास करता है। वैश्वीकरण ने किसानों के मन में जहां 'बंजर' बनाने की ठान ली थी, वहाँ संजीव किसानों की मूल प्रकृति के अनुसार उनके मन को 'उर्वर' बनाने का संकल्प लेते हैं। समस्याओं से भिड़कर तथा उन्हीं समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया गया यह प्रयास न केवल हिंदी कथा-साहित्य के खालीपन को भरता है बल्कि लिखने की एक नई दिशा की ओर भी संकेत करता है। हिंदी में प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास के बाद किसान जीवन से सम्बन्धित अत्यंत सशक्त उपन्यास के रूप में इस उपन्यास की ओर देखा जा सकता है। 'गोदान' की मुख्य चेतना का सम्बन्ध किसान-जीवन का तत्कालीन युग के साथ समग्र बिम्ब प्रस्तुत करना है, वहीं 'फाँस' की मुख्य समस्या किसानों की आत्महत्या है। गोदान का होरी कर्मठ है, कर्म करते-करते मृत्यु को गले लगाता है। जिन्दगी से वो हारा नहीं

है। जीवन से रूबरू होने का साहस उसमें है। किसान से मजदूर भले ही बन जाये पर जिन्दगी से चार-चार हाथ कर लेता है।

संजीव ने देखा कि उनके युग के किसान जिन्दगी से हारकर आत्महत्या कर रहे हैं। प्रेमचन्द के युग और वर्तमान समय में आया यह अंतर लेखक को विचलित करता है। लेखक की पीड़ा भी यही है। यह शायद पहली बार है कि संजीव जैसा कोई हिंदी भाषी महाराष्ट्र में विदर्भ के किसानों की आत्महत्याओं से पीड़ित होकर यहाँ आकर बस जाता है। इन लोगों के बीच घुल-मिलकर उनके जीवन का साक्षी बन जाता है। इन किसानों के दुःख और इनकी परेशानियों का साझेदार बन जाता है। इन पीड़ाओं को भुगतते समय रात-रात भर रोता है। इन परेशानियों पर मात कर जीने वाले प्रकाश के द्वीपों से भी परिचित कराता है। 'फाँस' से मुक्ति पाने वाले इन द्वीपों से ही प्रकाश ग्रहण कर 'फाँस' से मुक्ति की राहें आलोकित करता है।

यह उपन्यास महाराष्ट्र के विदर्भ, विशेषकर 'बनगाँव' को केन्द्र में रखकर यहाँ का समाज, यहाँ के लोगों की एवं किसानों की मानसिकता, जातीय मानसिकता, यहाँ के लोगों की जीवन-दृष्टि, यहाँ की संस्कृति, कृषि के क्षेत्र में यहाँ किये जाने वाले अनुसन्धान, जिन इंजीनियरों, बुद्विजीवियों के कार्य, सरकारी नीतियों के परिणामों की चर्चा करते हुए 'मेडालेखा' जैसे छोटे पर 'स्वशासित एवं आत्मनिर्भर' गाँव का रोल माडल प्रस्तुत करता है। उपन्यास के केन्द्र में यवतमाल जिले का 'बनगाँव' है। इस गाँव की बस्ती मिश्रित है। ब्राह्मण, राजपूत, मराठा तथा मामूली जोत के दलित और पिछड़े वर्ग यहाँ रहते हैं। गाँव के लोगों का प्रमुख व्यवसाय खेती है। जंगल की सम्पत्ति भी उनकी उपजीविका का जरिया है। यह सभी जानते हैं कि भारत कृषि प्रधान देश है। किसान के लिए खेती केवल व्यवसाय नहीं, जीने का तरीका है। खेती के साथ उसका रक्त-सम्बन्ध का रिश्ता है। किसानीपन उसके खून में है। माँ के साथ जो रिश्ता होता है, वही रिश्ता उसका जमीन के साथ है। वह खेती को माँ ही कहता है। इसीलिए खेती करना वह कभी नहीं छोड़ सकता। खेती उसकी जीविका का प्रमुख साधन होने के बावजूद खेती उसके लिए उद्योग नहीं है। उद्योग की प्रेरणा एवं उद्देश्य पैसा कमाना होता है। इस औद्योगिक दृष्टि का अभाव भारत के किसानों में है। गोदान का होरी इसका प्रतीक है। युग बदला गया,

स्थितियां बदल गयीं। उभरते पूंजीवाद के कारण किसानों की जीवन में परिवर्तन शुरू हुए, इसका संकेत प्रेमचन्द ही दे रहे थे पर 1991 के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया जब तेज हुई, तब कृषि जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया। भारत के संसाधनों, खासकर जल-जंगल जमीन और यहाँ के खनिज सम्पत्ति में रूचि रखने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने कृषि को उद्ध्वस्त कर दिया। भारत के कृषि नीति को विदेश नीति ने प्रभावित एवं नियंत्रित किया। अपने देश में किसानो के लिए कई योजनाएं मुहैया कराने वाले अमेरिका जैसे राष्ट्र ने अपने देश में किसानों के लिए एक नीति और भारत के किसानों के लिए दूसरी नीति चलायी। अपने देश में किसानों लिए सब्सिडी उपलब्ध कराने वाले अमरीका ने भारत को किसानों पर पाबन्दियाँ लाने के लिए बाध्य किया।

वैश्विक नीति तीसरी दुनिया के देशों के स्थानीय उद्योगों को खत्म कर वहाँ के लोगों को पूरी तरह से परावलम्बी बनाने की थी यह नीति किसान को खेती छोड़ने के लिए बाध्य करने वाली थी। इसीलिए खेती के क्षेत्र में नीति विदेशी, बीज विदेशी, खाद और रासानिक दवाइयां विदेशी। इसका परिणाम किसानों का जीवन उद्ध्वस्त होने में हुआ। बीज नपुंसक निकला, रासानिक खाद एवं दवाइयों की कीमतें आसमान छूने लगी। पहले ही कर्ज में डूबा और आसमानी संकट में फँसा किसान और बदहाली में जीने लगा। दूसरी ओर किसानों के प्रति देखने का नजरिया भी बदलने लगा। प्रेमचन्द ने किसान एवं किसानी के प्रति सम्मान के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की थी। इसका कहावत- "उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, अधम चाकरी" एसी बात की ओर संकेत करती है। वर्तमान समय में इस दृष्टि में परिवर्तन आया। वैश्वीकरण के युग में जहाँ भौतिक चकम-दमक आदमी से अधिक महत्त्वपूर्ण हुई और इन्हीं चीजों से आदमी का मूल्य बढ़ने लगा, वहाँ सादगी और भौतिक अभावों में जीने वाले किसान के प्रति लोग उपेक्षा एवं तिरस्कार से देखने लगे। विवाह के समय लड़की पति के रूप में डॉक्टर एवं इंजीनियर को ही चाहने लगी । खेती करने वाले से कोई ब्याह तक करने के लिए तैयार नहीं है। यहाँ तक कि हमारी शिक्षा नीति भी किसानों की उपेक्षा ही करती है। इसकी ओर संकेत करते हुए संजीव ने कहा है, "जो पढ़ाई शेती से घृणा करना सिखाये, स्वार्थी बनाये, वैसी पढ़ाई को चूल्हे में न डालूँ।" पुरानी कहावत पलट गयी। अब उसके बजाय यह कहा जाने लगा कि "उत्तम नौकरी, मध्यम व्यापार और अधम खेती।"

संजीव समकालीन कथाकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं। संजीव अपने उपन्यासों में गरीब, कमजोर, उपेक्षित, मजदूरों, दलितों, किसानों, स्त्रियों की शोषित दशा का चित्रण करते हैं। धार्मिक पाखंडों, सामन्तवादी व्यवस्था, वर्ण व जाति व्यवस्था, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास आदि का विरोध कर उन पर वार करते है। संजीव के उपन्यासों में व्यवस्थागत विसंगतियों के साथ पिछड़े अंचलों की बहुमुखी शोषण का भी विकराल रूप विद्यमान है। वे अपनी रचनाओं में समाज के यथार्थ को सजगता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। संजीव अपने समय और जीवन की प्रत्येक स्थिति को महसूस करके उन संवेदनाओं को अपने साहित्य में स्थान देते हैं। मजदूर, दलित, आदिवासी, शोषित, मजदूर वर्ग, कलाकार, किसान, पीड़ित जनता के दुखों को उन्होंने आवाज दी है। वे बहुधा वैज्ञानिक दृष्टि, प्रगतिशील विचारक, शोध प्रवत्ति से काम लेने वाले बहुआयामी व्यक्ति है, जो हिंदी साहित्य को अनेक मौलिक रचनाएं देकर समृद्ध करते हैं।

संजीव के अधिकतर उपन्यास यथार्थ परक हैं। इनका उपन्यास 'फाँस' किसानों की आत्महत्या पर केन्द्रित है। वर्तमान दौर में भारतीय किसानों की फसलें अकाल के कारण सूख रही है, अतिवृष्टि के कारण खेतों में ही अनाज सड़ रही है। उधर सरकारी महकमे मुँह मोड़ लिया है, जैसे उसे पता ही न हो। परिणाम स्वरूप किसान विकल्पों के अभाव में फाँसी के फंदे पर झूल रहा है। पिछले कई वर्षों से कई बार कभी अकाल तो कभी अतिवृष्टि ने किसानों की अग्नि परीक्षा ली है। खेतों में पड़ा बीज वापस घर में नहीं पहुंचता है। शादी के बेटे-बेटियों, धन के अभाव में नौकरी के नाम पर, सेठ, साहूकारों के हाथों बेचे जा रहे हैं। गाय-बैल कसाइयों की मशीन पर गर्दन झुकायें खड़े हैं। किसान रोता-बिलखता विवश दिखाई दे रहा है। थोड़ा-बहुत पैदा हुआ अन्य जैसे - गन्ना, गेहूं, कपास, आलू आदि अनाज मण्डी के दलालों के पेट जा रहा है। अमेरिका से चली जेनेटिक बीजों की खेप, भारतीय किसानों के खेतों में नखरे दिखा रही है। इस खेल में गरीबों की रोटी से खेल रहे हैं। सिर्फ इतना ही नहीं भारतीय बैंकों, अंतर्राष्ट्रीय, नीतियों के दबाव में किसानों के घर से हल, बैल, देशी खाद हटाकर, लोन देकर, ट्रैक्टर और रासानिक खादें पहुंचाने में लगी हैं। ऐसे इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का दबाव निरंतर भारतीय किसानों की गर्दन पर बढ़ता जा रहा है। बन्दर भालू की भांति सरकारे इस बैठक से उस बैठक का हवाला दिये जा रही है। दिल्ली से चली मुआवजा राशि, अजगर की भांति मरे किसानों की लाश तक भी

नहीं पहुँच पा रही है। लेखपाल, कानूनची बने साहबों की शहरी हवेलियाँ दिनोदिन चमकदार पत्थरों में तब्दील होती जा रही है। इधर अकाल के इस दौर में, किसान कृषि सुधारों की आस लिये बैठा है। उसे अब भी आशा है कि सरकार उनको बचाएगी अवश्य। संजीव के शब्दों में किसान विलुप्त होने वाली प्रजाति बन गयी है।

भारत एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है। अनेकता में एकता की प्रवृत्ति के कारण ही हमारे देश का विश्व में एक अलग पहचान है। इसकी अनेकता ही इसकी शक्ति है। जिस प्रकार अनेक रंगों के कारण इन्द्रधनुष अधिक सुंदर लगता है। वैसे ही हमारे देश की विभिन्न संस्कृति एवं भाषाएँ ही उसे विश्व में सबसे अलग और अधिक सुंदर बनाती है। रहन, सहन, खान-पान, वेश-भूषा, पर्व-त्योहार इत्यादि से भिन्नता होते हुए भी इसमें सांस्कृतिक एकता विराजमान है। उपन्यास साहित्य में मेरी रूचि विद्यार्थी जीवन से ही रही है। मेरी आरंभिक शिक्षा अवध प्रान्त से हुई है, जो कि ग्रामीण इलाकों की दशा-दुदर्शा से और किसानों की स्थिति से परिचित हूँ। इसी कारण हिन्दी में लिखे गये उपन्यास 'फाँस' जो किसानों की आत्महत्या पर यथार्थ रूप से केन्द्रित हैं, उसे जानने का मौक़ा मिला।

हिंदी उपन्यासों से परचित होने के बाद मुझे भारत के उन किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति, और सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, जीवन को जानने का मौका मिला ग्रामीण किसानों से मैं पहले से परिचित थी, जिससे मुझे भारत और अन्य प्रान्त के किसानों की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति में कई समानताएं और असमानताएं दिखाई पड़ी। जिस कारण मैंने किसानों पर लिखा गया 'फाँस' उपन्यास पर अध्ययन करने के बारे में सोचा।

उपन्यास की शुरुआत महाराष्ट्र (विदर्भ) राज्य के यवतमाल जिले के एक सुखाड़ गाँव 'बनगांव' के चित्रण के साथ होती है। बनगांव का चित्रण करते हुए उपन्यासकार लिखता है-"भला कोई कह सकता है कि सुखाड़ के ठनठनाते यवतमाल जिले के इस पूरबी छोर पर 'बनगांव' जैसा कोई गाँव भी होगा जो आधा वन होगा, आधा गाँव, आधा गीला, होगा आधा सूखा। स्कूल में लड़कों के साथ लड़कियाँ भी, जुए में भैंस के साथ बैंल भी जो होगा आधा-आधा।" इसमें विदर्भ के किसानों की कथा के साथ-साथ भारत के उन तमाम

किसानों तथा परिवारों की कथा कही गयी है, जो खेती किसानी के कर्ज से परेशान होकर आत्महत्या कर लेते हैं।

मेरे शोध का विषय "संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध" है, जिसे पाँच अध्यायों में विभाजन किया गया है। इन पाँचों अध्यायों से संबंधित विवरण इस प्रकार है-

शोध का प्रथम अध्याय है- शोध परिचय। इसके उपशीर्षक हैं 'शोध-शीर्षक', 'शोध परिचय', 'शोध की समस्या', 'शोध का उद्देश्य', 'पूर्व कार्यो की समीक्षा', 'शोध-प्रविधि', 'शोधकार्य का औचित्य', 'शोध की सीमा', 'शोध का प्रयोजन'। प्रथम उपशीर्षक के अंतर्गत शोध के शीर्षक को दर्शाया गया है। द्वितीय उपशीर्षक में शोध का परिचय है। इसके अंतर्गत विदर्भ देश के किसानों के समस्या को स्पष्ट किया गया है। साथ ही जिस विषय में शोध किया जा रहा है उसका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। शोध परिचय उपशीर्षक में हिंदी साहित्य में 'फाँस' उपन्यास के यथार्थबोध पर प्रकाश डाला गया है। तीसरा उपशीर्षक शोध की समस्या है। इसके अंतर्गत शोध की प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है। चौथा उपशीर्षक है 'शोध कार्य का उद्देश्य'। प्रस्तुत उपशीर्षक में शोध के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वर्तमान में किसानों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थबोध को दर्शाते हुए उनके कृषि एवं खेतों की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। पाँचवां उपशीर्षक संबंधित विषय में हुए शोध कार्यों का विवरण है। इस उपशीर्षक में संजीव के साहित्य से सम्बधित अनेक शोध कार्य भारत के विभिन्न विश्वविद्यालय में किन-किन विषयों में हुए हैं उसे उल्लेखित किया गया है। 'शोध प्रविधि' उपशीर्षक में शोध में किए गए प्रविधियों का उल्लेख किया गया है। जिनमें विशेष रूप से विवेचनात्मक, आलोचनात्मक, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रविधि के साथ आवश्यकता अनुसार अन्य प्रविधियों का प्रयोग भी किया गया है। शोध के औचित्य उपशीर्षक में शोध के औचित्य को स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार भारत के किसानों को खाद, पानी, बिजली, और अन्य परेशानियों का सामना करना पड़ा है। आठवें उपशीर्षक में शोध की सीमा को बताया गया है। इसमें स्पष्ट रूप से उल्लेखित कर दिया गया है कि शोध कार्य की सीमा 'संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास पर होगा। शोध का प्रयोजन उपशीर्षक में यह स्वीकार किया गया

है कि शोध कार्य का प्रयोजन सिक्किम विश्वविद्यालय के भाषा और साहित्य संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय में एम.फिल शैक्षिक उपाधि पाना है।

शोध का द्वितीय अध्याय – 'संजीव: व्यक्तित्व एवं रचना कर्म और यथार्थबोध : अवधारणा एवं स्वरूप' है। इस अध्याय के प्रथम भाग में संजीव का व्यक्तित्व और साथ ही उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय का भी उल्लेख किया गया है। किसी भी साहित्यकार का जिस परिवेश में जन्म होता है, उसी परिवेश के वातावरण से उसका व्यक्तित्व बनता है और वह परिवेश उसकी साहित्यिक रचना के लिए प्रेरक बनता है। प्रस्तुत उपशीर्षक उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी रचनाओं में किस प्रकार पड़ा इस पर चर्चा की है। सबसे पहले संजीव का जन्म, शिक्षा-दीक्षा, साहित्यिक परिवेश, इसके बाद इनके साहित्य के प्रति अभिरुचि तत्कालीन परिवेश के साथ राजनीतिक सक्रियता को दर्शाया गया है। प्रथम उपशीर्षक के अंतर्गत ही संजीव के व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत किया गया है। इसमें संजीव की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और प्राप्त पुरस्कारों का उल्लेख है। संजीव के रचनाकर्म में उनके प्रमुख उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। तद्पश्चात एक कहानीकार के रूप में संजीव कैसे थे इस पर विचार किया गया है और इनके सभी कहानी संग्रहों के संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय उपशीर्षक – 'यथार्थबोध : अवधारणा एवं स्वरूप' है। इसके अंतर्गत सबसे पहले यथार्थ के अर्थ और परिभाषा को स्पष्ट किया गया है। साथ ही यथार्थ के विवध प्रकार के अंतर्गत सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक यथार्थ, धार्मिक यथार्थ, आर्थिक यथार्थ, मनोवैज्ञानिक यथार्थ, सांस्कृतिक यथार्थ और पारिवारिक यथार्थ का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके बाद यथार्थ और यथार्थबोध का संबंध, यथार्थबाद और साहित्य का संबंध और यथार्थबोध : मानव जीवन के विविध सन्दर्भ जैसे तीन प्रस्तुत बिंदुओं पर चर्चा करके इस अध्याय को पूर्ण किया गया है।

शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय- 'फाँस उपन्यास में अभिवक्त सामाजिक यथार्थ-बोध' है। इसके अंतर्गत पाँच उपशीर्षक है 'स्त्री जीवन', 'शिक्षा एवं रोजगार की समस्या', 'जाति-व्यवस्था', 'धार्मिक संघर्ष',

'जनमानस पर उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव'। किसानों की स्त्रियों को जमींदार, सेठ, प्रधान, सरपंच, मुशी, ठाकुर तथा पंडित भोग्य समझकर, डरा धमकाकर उन पर अत्याचार करते हैं। शिक्षा और रोजगार की समस्या किस रूप में किसानों पर हावी है वो सब प्रस्ततु किया गया है एवं भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत समस्या पर भी विचार किया गया है। धार्मिक संघर्ष के अंतर्गत समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का वर्णन किया गया है। उपभोक्तावादी चेतना को निर्मित करने और फैलाने में उद्योगपति एवं उच्च वर्ग की क्या भूमिका रही है इसे भी इस अध्याय में प्रस्ततु किया गया है।

शोध प्रबंध का चौथा अध्याय 'फाँस उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन का यथार्थ' है, जिसे पांच उपशीर्षक में बांटा गया है। जैसे-'कृषि-नीति', 'खेती के लिए यंत्रीकरण का दुष्प्रभाव', 'बढ़ता बाजारवाद और मूल्यों में गिरावट', 'किसान जीवन पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव, 'किसान आत्महत्या'। भारत एक कृषि प्रधान देश है यह वाक्य बचपन से कितनी बार पढ़ा और कितनी बार सुना यह कोई गर्व की बात नहीं है, बचपन में इसे सुनना अच्छा लगता था परन्तु अब ऐसा लगता है मानों कोई इस वाक्य के साथ भद्दी गंदी गाली दे रहा है, किसानों के लिए शोषण लूट ही तो है। भारत की कृषि नीति भी किसानों का जीना मुश्किल कर दिया है, सरकार किसान के लिए नीतियाँ तो बनाती है, लेकिन वो केवल फाइलों में बंद पड़ी रहती है। इन सब पर चर्चा की गई है। यंत्रीकरण के आ जाने से गरीब किसानों को किस तरह से बेरोजगार हो रहा है, बढ़ता बाजारवाद में किसान अपने फसल का मूल्य तक नहीं तय कर पाते हैं, भ्रष्ट, नेता, सेठ, साहूकार इनके फसलों पर राज करते हैं, इस पर भी चर्चा किया गया है। भूमण्डलीकरण के वजह से आज विदेशी बीज, विदेशी खाद, विदेशी गाय के आ जाने से किसान पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है इसे अंतिम में किसान 'किसान आत्महत्या' उप-शीर्षक से स्पष्ट किया गया है।

शोध प्रबंध का पाँचवा अध्याय- 'फाँस उपन्यास की भाषा-शैली' है, जिसे दो उपशीर्षकों में बाँटा गया है। पहला उपशीर्षक है - भाषा: 'कथ्यगत भाषा', 'काव्यगत भाषा', दूसरा उपशीर्षक है - शैली: 'संवादात्मक शैली', 'व्याख्यात्मक शैली', 'आत्मलाप शैली', 'वर्णनात्मक शैली'। इसके अंतर्गत भाषा का

अर्थविश्लेषण और शैलीगत मूल्यांकन का विवेचन- विश्लेषण किया गया है। विवेच्य कथा-साहित्य में प्राप्त मराठी, भोजपुरी, अवधी, संस्कृत शब्द, फ़ारसी, अंग्रेजी शब्दों आदि का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। भाषा-सौन्दर्य के विविध उपकरण, रूपक, उपमान, शब्द-शक्तियाँ, मुहावरे, कहावतें आदि का विवेचन किया गया है। अंत में उपसंहार शीर्षक से शोध के निष्कर्षों को शब्दबद्ध करने की कोशिश की गई है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को पूर्ण रूप देने में मुझे अनेक लोगों का सहयोग मिला जिनका मैं सदा आभारी रहूँगी। सर्वप्रथम मैं हिन्दी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध विषय पर शोध करने की अनुमति और अवसर दिया। मैं अपने परम् आदरणीय गुरुवर तथा शोध निर्देशक डॉ. दिनेश साहू के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने शोध-कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया। साथ ही मैं विभाग के गुरुजन डॉ. प्रदीप त्रिपाठी, डॉ. चुकी भूटिया, डॉ. उपमा शर्मा, श्री कुलदीप सिंह एवं पूर्व गुरुजन डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री, डॉ. आदित्य विक्रम सिंह, डॉ. श्रीकांत द्विवेदी का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोध कार्य में अपने सुझावों द्वारा मेरी सहायता की।

कोई भी सुनियोजित कार्य सफलतापूर्वक अकेले करना सम्भव नहीं होता। उसमें बहुत से अनुभवी, ज्ञानी, विद्धानों का सहयोग होना भी अपेक्षित है। प्रस्ततु शोध प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सदिच्छाओं और प्रयत्नों का सुफल है। अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा परम कर्तव्य है। डॉ. अरविन्द कुमार यादव, सहायक प्राध्यापक, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सांबा, जम्मू एवं कश्मीर, का धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूरा करने का पूरा सहयोग और आशीर्वाद दिया।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे विलक्षण प्रतिभा डॉ. दिनेश साहू जी का सान्निध्य गुरु रूप में प्राप्त हुआ। मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। जिन्होंने न केवल मेरा पथ प्रदर्शन किया, अपितु अपनी सहदयता, उदारता व प्रोत्साहन के द्वारा मेरा यह कार्य सम्पन्न करवाया। उन्होंने सदैव मुझे अध्ययन के लिए प्रेरित किया व अपने ज्ञान के प्रकाश से मेरा पथ आलोकित किया। उनके प्रति शब्दों द्वारा ऋण व्यक्त करके मैं ऋण मुक्त नहीं हो सकती।

मैं अपने पति डॉ. राम भवन यादव 'सिक्किम यूनिवर्सिटी' का ह्दय की समस्त गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ जिनकी प्रेरणा एवं सहयोग से मैं इस कार्य को पूर्ण कर पाई हूँ। मैं अपने पिता श्री गंगाराम यादव व अपने समस्त परिवारजनों के सहयोग को कभी नहीं भूल पाऊँगी जिनसे मुझे नित्य बल मिलता रहा। इस शोध कार्य को पूरा करने में मैं अपनी बहन अनीता के सहयोग को भी नहीं भूल सकती, जिन्होंने मुझे अध्ययन के लिए हमेशा प्रेरित करती रही। मैं अपने समस्त परिवार की भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पढ़ने में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

साथ ही, मैं मेरे अग्रज कृष्ण कुमार साह, बी आकाश राव, प्रीति प्रसाद, प्रीति यादव को भी आभार ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने शोध कार्य में मेरी सहायता की और साथ ही मुझे प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त मैं मेरे साथी दिव्य रंजन साहू, नारायण दाहाल और मेरे अनुजों का भी धन्यवाद करना चाहती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में मेरी सहायता की। साथ ही पुस्तकालय एवं रिसर्स फ्लोर के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने शोध-कार्य में यथासंभव सहायता की।

स्थान : गंगटोक, सिक्किम अनुसंधित्सु

दिनांक : विनीता देवी

प्रथम अध्याय

शोध-परिचय

1.1. शोध का शीर्षक

प्रस्तुत शोध कार्य का शीर्षक "संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध" है।

1.2. शोध का परिचय

संजीव हिन्दी कथा-साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार माने जाते हैं। उन्होंने अपने जीवन में जिन परिस्थितियों का अनुभव किया है, उन्हीं अनुभवों एवं परिस्थितियों को अपने साहित्य का विषय बनाया है। इनका जन्म 06 जुलाई 1947 ई. को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के गाँव बाँगर कलाँ में हुआ था। संजीव का व्यक्तित्व अपने आप में बहुत प्रभावशाली है। संजीव समकालीन कथाकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं। संजीव अपने उपन्यासों में गरीब, कमजोर, उपेक्षित मजदूरों, दलितों, किसानों, स्त्रियों की शोषित दशा का चित्रण करते हैं तथा धार्मिक पाखंडों, सामंतवादी व्यवस्था, वर्ण व जाति व्यवस्था, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास आदि का विरोध कर उन पर वार करते हैं। संजीव के उपन्यासों में व्यवस्थागत विसंगतियों के साथ पिछड़े अंचलों की बहुमुखी शोषण का भी विकराल रूप विद्यमान है। वे अपनी रचनाओं में समाज के यथार्थ को सजगता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। संजीव अपने समय और जीवन की प्रत्येक स्थिति को महूसस करके उन संवेदनाओं को अपने साहित्य में स्थान देते हैं। मजदूर, दलित, आदिवासी, शोषित, किसान, पीड़ित जनता के दुःखों को उन्होंने आवाज दी है। वे बहुधा वैज्ञानिक दृष्टि, प्रगतिशील विचारक, शोध प्रवृत्ति से काम लेने वाले बहुआयामी व्यक्ति हैं, जो हिन्दी साहित्य को अनेक मौलिक रचनाएँ देकर समृद्ध करते रहे हैं। उपन्यासकार के रूप में उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत 'किशनगढ़ के अहेरी' (1981) से की थी। फिर 'सर्कस' (1984) से लेकर 'सावधान ! नीचे आग है' (1986), 'धार' (1990), 'पाँव तले की दूब' (1995), 'जंगल जहाँ शुरु होता है' (2000), 'सूत्रधार' (2002), 'आकाश चम्पा' (2008), 'रह गईं

दिशाएँ इसी पार' (2011), 'फाँस' (2015) और 'प्रत्यंचा'(2018) जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासों से हिंदी साहित्य को समृद्ध किये। संजीव द्वारा रचित इन सभी उपन्यासों में 'फाँस' किसानों के यथार्थ जीवन पर केंद्रित है। इस उपन्यास में महाराष्ट्र का किसान समाज की वास्तविकता का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में पारिवारिक संवेदना की निराशा किसानों की दयनीय हालात, अशिक्षा, गरीबी, भूखमरी, सरकारी योजनाओं से वंचित, किसानों पर बाजारवाद का प्रभाव, प्राकृतिक आपदाएँ, सूखा, ओला, जंगली जानवरों, सेठ-साहूकारों की मिली भगत आत्महत्या का शिकार होते हुए साधारण किसान आदि का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।

इस उपन्यास के द्वारा संजीव भारतीय किसानों की सदियों से चली आ रही विडंबनाओं को दिखाने का प्रयास किए हैं। आज भी किसान कर्ज से ग्रसित है और अंत में उपायहीन होकर फाँसी के फंदे पर झूल रहे हैं। इस उपन्यास में महाराष्ट्र के विदर्भ प्रांत के यवतमाल जिले के 'बनगांव' के किसानों का वर्णन है। साथ-साथ इसमें कनार्टक व आंध्रप्रदेश के किसानों सहित भारत के उन सभी किसानों की कहानियाँ शामिल है, जिन्हें पहले जीएम बीजों का इस्तेमाल करने के लिए फुसलाया गया और फिर कर्ज दिया गया। लेकिन सूखे की मार और कुछ प्राकृतिक आपदाओं के अनाचार के कारण सीधे–सादे किसानों की जिन्दगी कर्ज और सूखे के बोझ तले दबकर आत्महत्या की तरफ बढ़ती गई। उसकी फसल को उचित मूल्य न मिलना भी आज एक गंभीर समस्या बन चुकी है। अच्छे बीजों की उपलब्धता और वितरण की असमानता की समस्या ने भी किसानों का जीना मुश्किल किया है और इसके चलते ये आत्महत्या का रास्ता चुन लेते हैं। इस उपन्यास की कहानी के ईद-गिर्द एक किसान परिवार है, जिसमें पति-शिबू, पत्नी शकुन और दो जवान बेटियाँ - छोटी कलावती और बड़ी सरस्वती है। शिबू एक जोड़ी बैल में से एक के मर जाने पर कठिन जीवन-संघर्ष में जगहंसाई के बीच हल में एक तरफ बैल और दूसरी तरफ भैंस बांधकर जुताई करता है। संजीव ने इस उपन्यास के माध्यम से कृषि से जुड़े लोगों की संवेदना और विडंबनाओं का चित्रण करने का प्रयास किया है। किसान परिवार आज महंगाई एवं अपने खेत में उपार्जन किया हुआ अनाज के उपयुक्त मूल्य न पाने के कारण वह कर्ज में डूब जाता है और अंत में विवश होकर आत्महत्या करता है।

'फाँस' उपन्यास की कथाकुल 42 अंको तथा 255 पृष्ठों में समाहित है। इसमें विदर्भ के किसानों की कथा के साथ-साथ भारत के उन तमाम किसानों तथा उनके परिवारों की कथा कही गयी है जो कर्ज से परेशान होकर आत्महत्या कर लेते हैं। 'फाँस' किसी एक किसान, किसी एक खेतिहर परिवार, किसी एक गाँव या फिर किसी एक प्रांत के किसानों की समस्या भर की कथा नहीं है, बल्कि यह उस घाव के नासूर बनने की कथा है जिसमें कहा जाये तो कई दशकों से अथवा आजादी से बहुत पहले से ही धर्म, अंधविश्वास, जटिल जातीय संरचना और सामंती-शोषण के सामाजिक ढांचे के कीड़े बिलबिला रहे हैं। जिससे देश में राजनैतिक उपेक्षा और भ्रष्टाचार का संक्रमण भी बुरी तरह फैल गया है। किसान जिसे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है, आज उसके कैंसर जैसे असाध्य रोग की पीड़ा से पीड़ित हो जाने की कथा है।

संजीव कथ्य के साथ-साथ शिल्प के सन्दर्भ में भी प्रयोगधर्मी हैं। संजीव अपने उपन्यास में भाषा और शिल्प को हथियार बनाकर जनवादी कहानी के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों का सामना करते हैं। उन्होंने कथा-साहित्य को प्रभावशाली बनाने के लिए नए-पुराने, प्रचलित-अप्रचलित सारी शिल्पगत पद्धतियों का प्रयोग किया है। जिस तरह उनके कथा-साहित्य में एक यथार्थ के साथ कई यथार्थ और एक घटना के साथ कई घटनाएँ जुड़ी नजर आती हैं, उसी तरह एक ही कहानी में कई कलात्मक तत्त्वों का प्रयोग नजर आता है। उनके लिए कोई खास शैली, शिल्प महत्त्वपूर्ण नहीं है। अपने कथा-साहित्य में उन्होंने ऐतिहासिक प्रसंगो, मिथक, फैंटेसी, दुःस्वप्न, प्रतीक, उपमा, आदि विभिन्न विधाओं और उनके तत्त्वों का भी उपयोग किया है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य को रोचक बनाने के लिए आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक-संवाद, मनोविश्लेषणात्मक, कथात्मक आदि शैलियों का प्रयोग कलात्मक रूप में किया है। संजीव की रचनाधर्मिता उनके शिल्प वैशिष्ट्य की उपयोगिता सामान्य जनमानस के जीवन को परिलक्षित करती है। उनकी शैली सामान्य होते हुए भी किसानों और मजदूरों के विचारों को तार्किक रूप से प्रस्तुत करती है। उन्होंने अपने उपन्यासों की भाषा को जीवंत बनाने के लिये विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों, मुहावरों, सूक्तियों, कहावतों, विशेषणों, उपमानों आदि का समुचित तरीके से प्रयोग किया है। जिनके माध्यम से संजीव के

कथा साहित्य की भाषा पाठक के मन में दाल के कंकड़ की भांति चुभती नहीं है, वरन नमक की भांति घुलने का प्रयास करती है।

1.3. शोध की समस्या –

प्रस्तुत शोध- कार्य में निम्नलिखित बिंदुओं को शोध की समस्या के रूप में देखा गया है –

1-हिन्दी साहित्य में यथार्थ-बोध की रूपरेखा कैसी है ?

2-'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त सामाजिक स्थिति का स्वरूप क्या है ?

3-'फाँस' उपन्यास में किसान जीवन का यथार्थ चित्रण किन रूपों में हुआ है ?

4-'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्रियों की स्थिति कैसी है ?

5-'फाँस' उपन्यास में किसानों के शैक्षणिक और सामाजिक उत्थान में सरकार और विभिन्न संस्थाओं की क्या भुमिका रही है ?

6- 'फाँस' उपन्यास में किसानों में व्याप्त अशिक्षा और गरीबी के कारण क्या हो सकते हैं ?

7-'फाँस' उपन्यास में लेखक ने किस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग किया है ?

1.4. शोधकार्य का उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध-कार्य में उल्लेखित समस्याओं का समाधान करना ही शोध का उद्देश्य है। जैसे-

1-हिंदी साहित्य में यथार्थ-बोध के स्वरूप को समझ सकेगें।

2-'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त सामाजिक स्थिति और उसके स्वरूप से परिचित हो सकेगें।

3-'फाँस' उपन्यास में व्याप्त किसान जीवन के यथार्थ से अवगत हो सकेगें।

4-'फाँस' उपन्यास में किसान जीवन ओर कृषि संबंधी समस्याओं से परिचित होगें।

5-'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्री जीवन की दशा दिशा से परिचित हो सकेगें।

6-किसानों की त्रासदी जीवन ओर उसके पीछे कार्य कर रहे कारक तत्वों को समझ सकेगें।

7-फाँस उपन्यास के भाषा-शैली के वैशिष्ट से अवगत हो सकेगें।

1.5 पूर्व शोध कार्यों की समीक्षा:

संजीव के साहित्य से सम्बंधित अनेक शोध कार्य भारत के विभिन्न विश्वविद्यालय से संपन्न हुए हैं। जिनके विवरण निम्नलिखित है।

1. संजीव के कथा साहित्य में सर्वहारा समाज जीवन का चित्रण – संतोष रघुनाथराव रायबोले, डॉ. बाबा साहब आबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, 2012 ई.
2. संजीव के उपन्यासों में लोक जीवन – राजू गाजुला, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद 2005 ई.
3. संजीव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन –सुमित कुमार नागर, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय,मेरठ 2011 ई.
4. संजीव के उपन्यासों में संवेदना एवं शिल्प – रवीन्द्र कुमार यादव, लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ , 2013 ई.

अत: स्पष्ट है कि संजीव के 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध" नामक विषय को लेकर अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। इस दृष्टि से मेरा यह अध्ययन सम्रग रूप से प्रस्तुत करने का एक प्रारंभिक प्रयास है।

1.6. शोध प्रविधि-

1.6.1. अध्ययन विश्लेषण का सैद्धांतिक आधार-

प्रस्तावित शोध कार्य को पूर्ण करने में मुख्य रूप से निगमनात्मक शोध-प्रविधियों का प्रयोग होगा। अध्ययन एवं आवश्यकतानुसार प्रस्तुत शोध कार्य में विवेचनात्मक, आलोचनात्मक, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार अन्य प्रविधियों का भी प्रयोग किया गया।

1.6.2. सामग्री संकलन विधि-

प्रस्तुत शोध कार्य में सामग्री संकलन मुख्य रूप से दो प्रकार के स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के अंतगर्त संजीव कृत 'फाँस 'उपन्यास लिया गया है और द्वितीयक स्रोत के अंतर्गत शोध से संबंधित आलोचनात्मक पुस्तक, लेख, शोध-ग्रन्थ ,पत्र-पत्रिका, वेब –माध्यम तथा विभिन्न पुस्तकालय से प्राप्त साम्रगी है।

1.7. शोध का औचित्य एवं महत्व -

प्रस्तुत शोध कार्य का औचित्य संजीव के 'फाँस 'उपन्यास में किसानों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहुलओं को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान समय में उनके यथार्थ को समाज के सामने प्रस्तुत करना है। भले ही इस शोध कार्य में 'फाँस'' उपन्यास में उल्लेखित किसानों के यथार्थ-बोध पर विचार किया गया है पर इस कार्य से पूरे भारतवर्ष के किसानों को फिर से समाज में उनके कठिन परिश्रम के मूल्य दिया जा सकता है। इस शोध के द्वारा किसानों को समाज में अपने हक दिलाना भी है। संजीव ने किस प्रकार किसान और मजदूर जीवन की त्रासदी, किसानों की आत्महत्या, सरकारी तंत्रों की बर्बरता एवं किसान से जुडी समस्याओं को बहुत बारीक़ से अध्ययन कर उसे विश्लेषित किया है। इसमें विदर्भ क्षेत्र के किसानों की कशमकश भरी जिन्दगी का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। भाषा की सहजता और सरलता के साथ-साथ व्याख्यात्मक शैली में सृजित उपन्यास अपने महत्व में महान बन पड़ी है।

1.8. शोध की सीमा-

प्रस्तावित शोध मुख्य रूप से संजीव के उपन्यास 'फाँस' पर आधारित है। अत: शोधकार्य इसी उपन्यास में उल्लेखित समाज के यथार्थ-बोध को केंद्र में रखकर किया गया है। इस शोध –कार्य को प्राक्कथन एवं उपसंहार के साथ पांच अध्यायों में विभाजित कर पूर्ण किया गया है।

1.9. शोध का प्रयोजन-

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध का मूल प्रयोजन सिक्किम विश्वविद्यालय के भाषा और साहित्य संकाय के हिन्दी विभाग के अंतर्गत एम.फिल. की उपाधि प्राप्त करना है।

1.10. शोध कार्य का ढाँचा-

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध को निम्नलिखित अध्याय में विभाजन किया गया है-

प्रथम अध्याय : शोध-परिचय

द्वितीय अध्याय : संजीव : व्यक्तित्व एवं रचना कर्म और यथार्थबोध : अवधारणा एवं स्वरूप

तृतीय अध्याय : 'फाँस' उपन्यास में अभियक्त सामाजिक यथार्थ-बोध

चतुर्थ अध्याय : 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन का यथार्थ

पंचम अध्याय : 'फाँस' उपन्यास की भाषा-शैली

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

द्वितीय अध्याय

संजीव : व्यक्तित्व एवं रचना कर्म और यथार्थबोध : अवधारणा एवं स्वरूप

2.1. संजीव: व्यक्तित्व एवं रचना कर्म-

2.1.1. व्यक्तित्व-

संजीव को बीसवीं सदी के श्रमसाध्य, शोधपरक, सशक्त एवं चर्चित कथाकार के रूप में जाना जाता है। उनके कथा साहित्य से मालूम होता है कि वे अपने परिश्रम, प्रतिभा, साधना और समर्पण के भाव से लेखन करते हैं। हर साहित्यकार अपने-अपने समय की परिस्थितियों एवं यथार्थ से प्रेरित होकर ही साहित्य निर्माण करता है। संजीव अपने उपन्यास 'सूत्रधार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है' और 'अपराध' जैसी रचना के कारण हिंदी जगत में प्रकाश में आये हैं। हिंदी साहित्य में उनकी पहचान एक अलग अहमियत रखती है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक तथा यात्रा-वृत्तान्त आदि विधाओं में लेखन किया है। संजीव की दृष्टि असीम है, व्यापक है, इतना ही नही बल्कि व्यापक संदर्भो से जुड़ी हुई है। उनकी रचनात्मता के कई आयाम दिखाई देते हैं। सामाजिक वर्ग-भेद, स्त्री-पुरूष समानता के परिप्रेक्ष्य में संजीव का कथा साहित्य महत्वपूर्ण एवं अहम् भूमिका निभाता है। संजीव के कथा साहित्य में मजदूर, नारी, दलित, निम्न वर्ग और आदिवासियों के शोषण का यथार्थ अंकन मिलता है। उनकी हर रचना एक ज़मीन तलाशती है, इतना ही नही बल्कि पूरी क्षमता और यथार्थ के साथ प्रस्तुत होती है । उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सामन्तवाद और पूंजीवाद को व्यंग्यात्मक शैली में विरोध किया है। एक तरह से देखा जाये तो कालमार्क्स के विचारों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा हुआ है। इसी कारण उनके साहित्य में शोषकों के प्रति घृणा एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति रही है। शोषकों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा संजीव का कथा साहित्य देता है।

जन्म-

हिंदी साहित्य जगत के सशक्त कथाकार संजीव का जन्म 06 जुलाई 1947 में सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश) के 'बांगर कला' गावं में हुआ। उनका जन्म एक बेहद गरीब संयुक्त परिवार में हुआ था, जिनका साहित्य से दूर तक का भी सम्बन्ध नही है। जन्मतिथि के संदर्भ में एक शोधार्थी को दिए मुलाकात में संजीव ने कहा कि "जन्मतिथि मेरे जैसे एक अनपढ़ गवार परिवार के लिए कोई अहमियत की बात नही थी, अतः पाठशाला के पांचवी कक्षा में नाम लिखने के लिए हेडमास्टर साहब को ही आविष्कृत करनी पड़ी 06 जुलाई 1947।"[1] जिस बांगरकला में उनका जन्म हुआ। वह कई छोटे छोटे पुरवा में बंटा हुआ गांव है। इस गांव के एक छोटे से पुरवा पाण्डेय के पुरवा में संजीव का जन्म हुआ।

वैसे तो संजीव के बचपन का नाम सजीवन प्रसाद था। कथाकार कमलेश्वर से उन्हें 'संजीव' नाम मिला और इसी नाम से वे साहित्य लेखन करते रहे। संजीव की पहली कहानी 'किस्सा एक बिमा कंपनी की एजेंसी का' राम सजीवन प्रसाद के नाम से 'सारिका' पत्रिका में भेजी थी, जिसे कमलेश्वर काट–पीटकर संजीव बना दिया और इसी नाम से उन्हें सभी जानते हैं। संजीव की माता का नाम जयराजी देवी और पिता का नाम रामशरण था। माता अनपढ़ थी तो पिता नाम मात्र के लिए साक्षर थे। जो रामायण, महाभारत, सुखसागर और इस तरह के धार्मिक ग्रन्थ नित्य रूप से पढ़ा करते थे। जयराजी देवी और रामशरण प्रसाद के चार संताने थी, जिसमें संजीव सबसे छोटे हैं। सबसे बड़ी परानादेवी जो विधवा हो चुकी है और अपने बच्चों के साथ रहती है। सबसे बड़े भाई रामजीवन प्रसाद सुल्तानपूर के सूरापूर कस्बे में इंटरकॉलेज में फिजिक्स के अध्यापक थे।उनसे छोटे का नाम राम शिरोमणि, चौथी कक्षा तक ही पढ़े थे। अत: वे गाँव में खेती बाड़ी करते रहे। संजीव और उनके बड़े भाई रामजीवन प्रसाद ही उच्चशिक्षित है।

बचपन-

संजीव के बचपन की बात करें तो संजीव का बचपन संयुक्त परिवार में बीता। संयुक्त परिवार जहाँ संवेदना आत्मियता बढ़ाने का काम करती थी तो वही आज विभक्त परिवार होने से बच्चे बिना दादा, दादी, चाचा, चाची के बड़े होते दिखाई देते हैं। जिस कारण संवेदना, अपनापन जैसी बातें किताबों के पन्ने पर ही

सिमट कर ही रह गई है। संजीव के माता के अलावा भी इस परिवार में पिता के चार भाईयों का भी समावेश था। "मेरा बचपन कुछ बांगरकला गाँव, कुछ ननिहाल, कुछ बहन के यहाँ, बाकी कुल्टी में। सबसे छोटा लगभग तीन-चार वर्ष की उम्र में मुझे अपने गाँव से नंगे पैर कुल्टी कस्बे में काका द्वारा लाया गया।"[2] बांगरकला में ज्यादातर ठाकुरों और ब्राह्मणों का गाँव है। उस इलाके में ठाकुरों का दबदबा था। वहाँ का ग्रामीण वातावरण और परिवेश में संजीव का बचपन और परिवारिक जीवन बीता। एक और सांमतों से होने वाला जानलेवा हमला और शोषण तो दूसरी और से संजीव की गरीबी थी, जिससे तंग आकर उनके पिता 1935 ई. में गाँव छोड़कर पश्चिम बंगाल के कस्बेनुमा शहर कुल्टी चले गये।

संजीव को बचपन में खेलना अधिक अच्छा लगता था- "हाय जम्प, लांग जम्प, गुल्ली डंडा, फुटबांल जिसका मैं कप्तान ही था।"[3] संजीव को बचपन से ही खेलने, परखने और किसी भी चीज को जांचने की आदत थी- "मैं उन दिनों नंग–धडंग सियारों, नीलगायों, लोमड़ियों, गिलहरियों को जिज्ञासु नजरों से जांचता-परखता, भैंस की पीठपर बैठकर चरागाह की सैर किया करता। केले छाल की पनही, पलास के पत्तों का टोप, कूंई की कंठी, सोते का पानी बस इन्हीं से मेरा वास्ता था।"[4]

इस तरह से उनका बचपन खेल-कूद में बीतता गया। संजीव बचपन में अपने ही परिवार के दो सदस्य से डरते थे। काकी और भैया से, काकी विमाता की तरह पेश आती और भैया प्रेमचन्द के बड़े भाई की तरह मारते भी थे। संजीव का बचपन तो अभावों से भरा था। बचपन से वे पढ़ने-लिखने में तेज थे। आज की जो उनकी मायावरी वृत्ति है। उसके बीज तो बचपन में ही दिखाई देते थे। संजीव और गरीबी का रिश्ता जैसे आलमारी में जेवरात की तरह है। गरीबी का सामना बचपन से ही करना पड़ा। वे अपनी बचपन की आर्थिक स्थिति बयान करते हुए कहते है कि- "पिता, काका कुल्टी में मजदूर थे। उन सब की आय बहुत ही कम था। पच्चीस-तीस रूपये महीने मिलते थे। रहने को भी समुचित स्थान नहीं था। कुल्टी में उन दिनों मजदूरों के घरों में बिजली, जल और पायदाने नहीं थे। मेरे पिता को कार्टर्स नसीब नहीं हुआ। मेले-ठेले में दो पैसे पा जाना बहुत बड़ी बात थी।"[5] इस तरह देखा तो संजीव का बचपन गरीबी से बीता है।

पारिवारिक जीवन-

संजीव का परिवार गरीब एवं शोषित रहा। उन दिनों परिवार के नाम पुश्तैनी जमीन केवल डेढ़ बीघा उपजाऊ और चार बीघा उसर भूमि थी, जिस पर परिवार के बीस पच्चीस सदस्य-आश्रित थे। परिवार का मुख्य पेशा खेती करना ही था। दशहरे के अवसर पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाना और बेचना। इसके आलावा दूसरों के यहाँ मेहनत मजूदरी करते थे। संजीव की 'पिशाच' कहानी में उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि की पुष्टि मिलती है - "एक तरह देखा जाय तो बंधुआ मजदूर थे हम। मेरे बाबा और दादी से महातम बाबा खेत कौए-सुग्गे हड़ाते, दादी और काका हलावाई करते, माँ और काकी अन्दर से लेकर बाहर तक के सारे काम करते। शाम को मिलने वाली मजूरी, जो प्राय: किनकी, कोदों या धुन लगे जो, मक्का की होती, को पीस की रोटी बनती।"[6] इस कथन से मालूम होता है कि संजीव के परिवारवालों के दिन गरीबी में, लचारी मेहनत मजदूरी करने में बीत गये। ऐसी परिस्थितियों में संजीव का लालन-पालन हुआ।

शिक्षा-दीक्षा-

संजीव की बुनयादी शिक्षा बहुत ही सामान्य पाठशाला में हुई। उन्होंने अपने शिक्षा के बारे में स्वयं बताया है - "प्रारंभिक शिक्षा बहुत ही मामूली सी पाठशाला में हुई। आगे की शिक्षा कुल्टी kendua (केंदुआ) हाईस्कूल,बी.,बी.कॉलेज आसनसोल और बाद में कलकत्ते में संपन्न हुई।"[7] 17 साल की उम्र में ही प्रथम श्रेणी में बी.एसी. की डिग्री उत्तीर्ण किया। उनके बड़े भाई रामजीवन ने उन्हें ए.एम.आई.ई.पढ़ने के लिए दिल्ली भेजा। साइंस के विद्यार्थी होते हुए भी उनकी रूचि हिंदी साहित्य-सजृन में थी । इसके अतिरिक्त उन्होंने इंग्लिश, ऊदू और बांग्ला और कुछ जनजातियों भाषाओं का अध्ययन किया। संजीव अपने पढ़ाई के बारे में कहते है- "बालक रामसजीवन आदि कुल्टी नहीं आया होता तो किसी की हलवाई कर रहा होता या डोर चरा होता।"[8]

नौकरी-

संजीव का पूरा जीवन संघर्षमय रहा। बी.एसी. उपरांत नौकरी कर अच्छी जिन्दगी जीने के लिए काफी समय तक संघर्ष करना पड़ा। स्वयं संजीव ने अपने आरंभिक दिनों के संघर्ष को इस प्रकार बताया है– "साइंटिस्ट बनाने के लोभ में इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, पश्चिम में असिस्टंट केमिस्ट की नौकरी जाईन के बाद में ये मूर्खता जैसी ही लगी। कारण सारा कुछ रोटीन जॉब था। 1971 ई. में यह लोभ दूसरी बार प्रगट हुआ जब मैं ने ए.आई.एस.की परीक्षा पास की पर उसका भी कोई बौधिक और आर्थिक लाभ नहीं बन पाया।"[9] कारखाने में आठ घंटे मेहनत करने पर भी कम वेतन मिलता था जिससे परिवार चलाना मुश्किल हो गया इसीलिए संजीव नौकरी के साथ अन्य काम भी करते रहे-जैसे बीमा कंम्पनी की एजेंसी ली। बीमा कंम्पनी के कुचक्र पर एक कहानी 'किस्सा एक बीमा कंम्पनी की एजेंसी' का शीर्षक से लिखकर छपवा दिया। नतीजा यह हुआ की बीमा कंम्पनी उन्हें काम से निकाल दिया। संजीव ने नौकरी तथा व्यवसाय के रूप में हर काम किया है। संजीव के बारे में रवि शंकर लिखते है- "पाँच संतानों के दायित्व के कारण संजीव को खर्च की अपूति के लिए ट्यूशन भी पढ़ाना पड़ा। 'मरोड' कहानी में उनके ट्यूशन जीवन की पीड़ा प्रतिबिंबित है, उफ् ! कितने हाथ-पाँव मारे मगर इस ट्यूशन के मकड़-जाल से कहा निकल पाये। जब जिन्दगी अपनी नहीं ओरों के नाम परवान चढ़ चुकी हो तो सारे अरमान धरे के धरे रह जाते।"[10] अथार्त अभाव को झेलते रहें। सन् 2003 में इंडियन आयरन एण्ड स्टील कंम्पनी बंद होने पर स्वेच्छा से सेवा निवृति लेनी पड़ी उसके बाद चार महीने तक "अक्षरपर्व" का संपादन कार्य किया कोई विकल्प न पाकर आजकल साहित्य लेखन कर रहे हैं।

वैवाहिक जीवन-

भारतीय रीतिरिवाज के अनुसार संजीव का विवाह नौ-दस वर्ष की छोटी-सी आयु में हिन्दू पद्धति से श्री मती प्रभावती देवी से संपन हुआ लेकिन पत्नी आयी सन 1962 में गौने में और तब से दोनों साथ रहने लगे। प्रभावती देवी सुबह शाम पूजा-पाठ में जुड़ी रहती थी, जो ग्रामीण संस्कार धार्मिक वृत्ति की महिला है। संजीव अपने वैवाहिक जीवन के बारे में कहते हैं कि- "वैवाहिक जीवन बहुत अच्छा न रहा। मैं लगभग

तनहाइयों में जीता रहा। ये भी तो नहीं ठीक की हर दर्द बता दे कुछ दर्द कलेजे से लगाने के लिए है।"[11] संजीव का वैवाहिक जीवन बहुत ठीक ना था। श्रीमती प्रभावती देवी केवल चौथी कक्षा तक पढ़ी थी। इसी कारण संजीव की रचनाओं पर विचार विमर्श या कुछ सुझाव न दे सकी। किसी भी रचनाकार के लिए पत्नी का सुझाव बड़ा सहायक होता है। वह संजीव की रचनाओं की सबसे पहली पाठिका नही बन सकीं। नरेन संजीव के वैवाहिक जीवन के बारे में कहते हैं- "मैं एक तथ्य को खूब गहराई से रेखाकिंत करना जरूरी समझता हूँ कि पति-पत्नी के बीच पूरी तरह वैचारिक वाइब्रेशन के न होने के बावजूद दोनों के बीच कुछ अनोखे किस्म का लगाव है कुछ विचित्र किस्म की 'केमिस्ट्री' काम करती है दोनों के बीच। जल्द ही साठ को छू लेने की और अग्रसर दोनों प्राणी संभवतः अपने स्टाईल में एक दूसरे को प्यार करते है।"[12] संजीव जी अपने विवाह को लेकर 'सीपियों का खुलासा' कहानी में इस तरह के 'अरेंज मरेज' का विरोध जताते हैं, जिसमें लड़के-लड़की की मर्जी का कोई ख्याल नहीं रखा जाता। कहानी का नायक कहता है, "आई हैट सच शार्ट इंपोज्ड लव।....कितने आश्चर्य की बात है, जिस लड़के से लड़की बिल्कुल अनजान रहती है, समाज एक गैर जिम्मेदार चपरासी की तरह शादी का स्टांप मारकर उसके साथ बाड़े में बंद कर देता है खसी बकरी की तरह।[13]

संतानों की बात करें तो संजीव के सिर्फ पांच संतानें थीं। पहले चार बेटियाँ बाद में बेटा हुआ। सबसे बड़ी बेटी मंजू मानसिक रूप से मंदबुद्धि की है। दूसरी बेटी अंजू अपने अव्यवहारिक, असमान्य पति के आचारणों से परेशान होकर माँ–बाप के पास वापस लौट आई और अपने 8 साल की बेटी को लेकर रहती है। अन्य दो लड़कियों का विवाह हुआ है। वे दोनों दिल्ली में वैवाहिक सुखी जीवन बिता रही हैं। लड़का संतोष एक कंपनी में काम कर रहा है।

साहित्यिक परिवेश-

संजीव ने अपनी साहित्यिक सृजन की शुरुआत सबसे पहले स्कूली जीवन में कविता लेखन से की। संजीव कक्षा 6 के छात्र थे, तब उन्होंने 'डील' नामक कविता लिखी। इसके उपरांत उन्होंने अन्ताक्षरी

पत्रिका के लिए कवितायें लिखी। इन्होंने कई प्रतियोगिताओं में पुरस्कार भी प्राप्त किये। संजीव साहित्यिक प्रेरणा के बारे में लिखते हैं- "भाषा के प्रति मोह बढ़ रहा था। प्रकृति के रूपों में उलझा-उलझा मन। पंत प्रिय कवि। प्रेमचन्द, सुदर्शन, शिवपूजन सहाय, पदुमलाल पुन्नालाल बख़्क्षी की रचनाओं से अनुप्रेरित होकर पहली ह्दय परिवर्तन की कहानी हस्त लिखित पत्रिका 'पल्लव' में मौसमी लेखन में कविता, निबन्ध, कहानी के पुरस्कार।"[14] यही संजीव की पसंद की दुनिया और उसकी उपलब्धियाँ हैं। वे अपनी साहित्यिक रूचि का श्रेय अपने स्कूल के शिक्षक नंदकिशोर दास सोनी, अनिल कुमार महथा, पारसनाथ पाठक, केदार पाण्डेय, गौरीरमण शर्मा, नरेद्रनाथ एवं देवनाथ सिंह द्वारा संचालित हिंदी साहित्य सेवा समिति नामक संस्था की हस्तलिखित पत्रिका पल्लव को देते हैं।

पुरस्कार-

व्यक्ति का जो कार्य है वह जितना समाज उपयोगी साबित होगा उससे उतने ही पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है, ताकि वह और भी बेहतरीन रचनाओं का योगदान समाज को दे सके। संजीव ने अपनी साहित्यिक रचनाओं की शुरुआत स्कूली जीवन से कविता लेखन से की है। संजीव के शब्दों में- "वह सन् 1955 था, मैं छठीं कक्षा का छात्र था। पहली रचना एक कविता थी 'डील' पर पुरस्कार पाने के लिए लिखी थी। बाद में 'अन्ताक्षरी' के लिए कविताएँ लिखी। प्रतियोगिताओं में ईनाम बटोरे। पहली कहानी 'परिवर्तन' थी एक हस्तलिखित पत्रिका 'पल्लव' के लिए। लिए बड़ी पत्रिकाओं में पहली कहानी 'किस्सा' एक बीमा कंपनी की एजेंजी का' थी जो 'सरिका' नवलेखन अंक अप्रैल 1976 में प्रकाशित हुई थी।"[15]

2.1.2. रचना कर्म-

उपन्यास-

1. किसनगढ़ के अहेरी - 1981
2. सर्कस- 1984
3. सावधान! नीचे आग है - 1986

4.	धार -	1990
5.	पावं तले की दूब-	1995
6.	जंगल जहाँ शुरू होता है -	2000
7.	सूत्रधार -	2002
8.	आकाश चम्पा -	2008
9.	रह गईं दिशाएं इसी पार-	2011
10.	फाँस -	2015
11.	प्रव्यंचा-	2018

कहानी-

1.	तीस साल का सफरनामा -	1918
2.	आप यहाँ है -	1984
3.	भूमिका और अन्य कहानियाँ -	1987
4.	दुनिया की सबसे हसीन औरत -	1990
5.	प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ -	1995
6.	प्रेतमुक्ति -	1996
7.	ब्लैक होल -	1997
8.	डायन और अन्य कहानियाँ -	1999
9.	खोज -	2002
10.	गति का पहला -	2004
11.	गुफा का आदमी-	2006

नाटक-

1-आपरेशन जोनाकी

यात्रा साहित्य -

1. सात समंदर पार

कविता-

क. कह रहे तुम गीत गाओं, **ख.** दीपावली होली, **ग.** शहीदों के नाम, **घ.** गुमसुम सी घिर आती,

ङ. गाड़ीवान रेगिस्तान

संजीव कृत महत्वपूर्ण कुछ उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

किशनगढ़ के अहेरी-

संजीव का पहला उपन्यास 'किशनगढ़ के अहेरी' है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1981 में मीनाक्षी पुस्तक मन्दिर, दिल्ली से हुआ। संजीव ने इस उपन्यास में उच्चवर्णीय समाज की ढोंगी परंपरा तथा धार्मिक आडंबरता का पर्दाफाश किया है। ब्रह्मचारी की भांजी राधा विधवा होने पर उसका धर्म के नाम पर मुंडन कराना तथा मामा द्वारा राधा पर बलत्कार करना धार्मिक आडम्बर वृति घोतक है। विधवा राधा अपनों तथा परायों के शोषण से तंग आकर गोमती नदी में जान दे देती है। यहाँ संजीव ने विधवा की स्थिति तथा उच्चवर्णीय की मानसिकता का पर्दाफास किया है। "बित्यामाने अहेर और बड़कवा माने अहेरी।"[16] इस उपन्यास में अवध के किशनगढ़ के दो वर्गो का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जिसमें एक सम्पन और सत्ता वालो का तो दूसरा विपन्न अंधविश्वास और शोषितों का जैसे: ढोंगी साधू-सन्यासियों द्वारा पाप-पुन्य तथा अन्धविश्वास की आड़ में निम्नवर्ग की बहन बेटियों का योंन शोषण होता हुआ दिखाई देता है। दूसरी ओर उच्च वर्ग के लोग वर्ण व्यवस्था, जातिवाद तथा सामंत प्रवृति के कारण सामान्य गरीब जनता पर अत्याचार करते हैं। अत: यह उपन्यास सामन्ती रोब, जाति व्यवस्था तथा धर्म और वर्ण के सहारे टिकी राजनीति की पोल खोलता है जो आज के समय में भी प्रासंगिक है।

सर्कस-

'सर्कस' संजीव का दूसरा और सफल उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष सन् 1984 में राधा कृष्णा दिल्ली से हुआ है। इस उपन्यास का मुख्य केंद्र 'झरना' उर्फ़ 'कामनी' की जीवन -कहानी है। 'झरना' की माँ मर चुकी है और पिता रामू दादा सर्कस में मामूली काम करते हैं। 'झरना' पिता के साथ रहने की जिद् करके सर्कस में जाना चाहती है। लेकिन पिता को मालूम होता है कि सर्कस में जीवन बीताने में बहुत ही परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए पिता अपनी पुत्री को सर्कस में ले जाना नही चाहता पुत्री की जिद् के कारण पिता की इच्छा न होते हुए भी वह सर्कस का जीवन जीने लगती है।

सर्कस का मालिक नियोगी सैंड आदि सर्कस में आने वाली लड़कियों का मानसिक और लौंगिक उत्पीडन करते हैं। इस कलाकारों को बधुआ मजदूर की तरह मालिकों की मर्जी से जीवन बीताना पड़ता है। सर्कस का मालिक 'झरना' का नाम अपनी इच्छा और रूचि से बदल देता है। कभी झरना, कभी गीता, सुजाता, कामनी आदि नामो से सर्कस में अपनी कला हुनर दिखाती है। झरना सर्कस में होने वाले शोषण तथा अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती है। इस संदर्भ में बशुदेव झा कहते हैं- "सर्कस में आदमी को जानवर और जानवर को आदमी की तरह ट्रीट किया जाता है।"[17] सर्कस जैसे करतब दिखने वाले व्यवसाय में अक्सर मनुष्य मजबूरी से ही अपना कदम उसमें रखता है, क्योंकि इसमें उसका शोषण होता है तथा उसका जीवन उपेक्षित रहता है।

सर्कस के कलाकार के अंदर चाहे कितनी भी पीड़ा हो लेकिन वह उससे छिपाकर रखता है। अपनी बनावती हंसी, दर्शको को हँसाने वाला मनोरंजन करने वाला करतब करता है, क्योंकि हंसी का नाम ही सर्कस है। एक कलाकार की पीड़ा को वही समझ सकता है जो संवेदना से फलीभूत हो जिस प्रकार एक कुहार को अपनी मिट्टी की पहचान होती है कि अब वो बर्तन बनाने योग्य है की नही अत: इस उपन्यास में सर्कस में काम करने वाले कलाकार और मजदूरों के आर्थिक, शारीरिक और भावात्मक शोषण का यथार्थ अंकन परिलक्षित होता है। डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ का कथन है कि- "किशनगढ़ के अहेरी' में संजीव ने

जिस जनधर्मिता का परिचय दिया था, वह 'सर्कस' में भी समूजी प्रामाणिकता के साथ व्यक्त हुई है। चूँकि पहली बार हिंदी उपन्यास में सर्कस से जुड़े व्यक्तियों का अंतरंग संसार उद्घातित हुआ है, इसलिए 'विषय' की दृष्टि से भी यह उपन्यास नयी दिशा खोलने वाला है।"[18] पहली बार हिंदी साहित्य में सर्कस से जुड़े व्यक्तियों का अन्तरंग अंकन हुआ है।

सावधान! नीचे आग है-

संजीव का तीसरा उपन्यास 'सावधान ! नीचे आग है' का प्रकाशन सन् 1986 में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है। यह उपन्यास दो भागों में बांटा गया है। पहला भाग 'सतह' के नीचे है दूसरा भाग 'सतह' के ऊपर है। उपन्यास का पहला भाग 'सतह' के नीचे में झारखंड के धनबाद जिले में स्थित चन्दनपुर गाँव के कोयला खदान का दृश्य तथा कोयला खदान में काम करने वाले मजदूरों के जीवन का यथार्थ चित्रित हुआ है। उपन्यास में खदान के भीतर और बाहर खदान मालिक, सूदखोर, ठेकेदार, यूनियन के गुंडे, खदान मजदूरों का आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण करते हैं। मजदूर जब अपने हक के लिए लड़ते हैं तबतक मैनेजमेंट उन्हें मारने के फिराक में लगी रहती है। खदान के वेंटिलेशन अफसर विष्ट दा कहते हैं- "असल में खदान चलाते हैं माफिया सरदार-चन्द्रकिशोर सिंह, गजाधरसिंह, रामजी तिवारी और बुझारथ सिंह जैसे-कंट्रैक्टर। इन्हीं की यूनियन, इन्हीं के सूदखोर,इन्हीं के दारुखाने, इन्हीं की पुलिस और इन्हीं के प्रशासन। जायज-नाजायज सब इन्हीं का। मैनेजर, एजेंट तो इनकी इच्छा के गुलाम हैं। मजाल है, इनकी हुक्म-उदूली करके आगे निकल जायें? खदान के नीचे-बाटम से टॉप गियर तक और सिक्योरिटी से लेकर सेक्रेटरियत और मंत्री तक सभी महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर इनके आदमी तैनात हैं।"[19] उपन्यास के प्रमुख पात्र ऊधमसिंह और आशीष रोजगार की तलाश में चन्दनपुर में आकर कोयला खदान में कार्य करते हैं। खदान में कई राज्यों के मजूदर काम करते हैं। खदान का असुरक्षित क्षेत्र में पानी का जमाव होने से मजूदरों की जिन्दगी खतरों से गुजरती है। उपन्यास के दूसरा भाग 'सतह के ऊपर' में चन्दनपुर कोयला खदान डूबने से मजदूरों के परिवारों की मानसिक स्थिति का मैनेजमेंट तथा सरकार की भूमिका का यथार्थ अंकन हुआ है।

'सावधान !नीचे आग है' इस शीर्षक की सार्थकता इसी में है की कोयला खदान के जमीन के नीचे धधकती आग, गैस, पानी तथा जहरीले वायु, चाल गिरने से मजदूरों को सावधान ! रहना चाहिए। खदान मालिक भ्रष्ट मैनेजमेंट व्यवस्था, ठेकेदार, दलाल, सूदखोर ये सारे लोग आग से भयानक है। इन सबसे मजदूरों को सावधान किया गया है।

धार-

संजीव का चौथा उपन्यास 'धार' है। यह उपन्यास राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। इसका प्रकाशन 1990 में हुआ। संजीव का यह उपन्यास एक जनजातीय महिला के संघर्ष की कहानी है, जो परम्परागत मूल्यों और मर्यादाओं पर सवाल खड़ा करती है। सही रूप में देखा जाय तो मजूदरों के लिए लड़ने वाले स्वार्थी तत्वों की शिनाखूब करती है। सरकारी तन्त्र का पर्दा–फ़ांस करती है। और अंत में सारी व्यवस्था से लड़ते–लड़ते शहीद हो जाती है। स्त्री-विमर्श के दौर में मैना की यह कहानी कई दृष्टियों से एक चुनौती पेश करती है।

इस उपन्यास में झारखंड का बांसगगड़ा संथाल परगना और नागपुर में कोयला अंचल खदानों में काम करने वाले संथाल आदिवासी गुलगुलिया, मोची, श्रमजीवी और मजूदरों की व्यथा की कहानी है। पुलिस द्रवारा किया जाने वाला शोषण का यथार्थ अंकन हुआ है। उपन्यास की नायिका संथाल आदिवासी महिला मैना है उसी के परिपेक्ष्य में आदिवासी जीवन, संघर्ष और चेतना का यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। मौना ओझा की गर्दन पकड़कर कहती हैं- "खा जाहिर थान का कसम ! खा मारा बुरु का कसम !...कि तू घूस नहीं खाता है, सच बोल रआ हैं। अरे ओकरा में तो तोर चेहरा लौक रहा है तो तू हो गया डाइन।"[20] इस उपन्यास का मुख्य भूमिका 'धार' की सार्थकता इसी में है श्रमिक वर्ग को पूंजीपतियों के शोषण के खिलाफ संघर्ष करने के लिए सतत सान से ताजा होती धार की जरूरत है। 'धार' शीर्षक का प्रतीकात्मक अर्थ है श्रमिक वर्ग संगठित होकर हमेशा अन्याय के खिलाफ लड़ते रहे। अत:स्पष्ट है कि इस 'धार' उपन्यास में आदिवासी जीवन तथा उनकी चेतना, अधिकार बोध और संघर्ष का अंकन हुआ है।

पाँव तले की दूब-

'पाँव तले की दूब' संजीव का लघु उपन्यास है। इसकी कथा के केंद्र में झारखंड राज्य पंचपहाड़ क्षेत्र है। औद्योगिकीकरण किस प्रकार गाँवों से आदिवासियों को विस्थापित कर रहा है इसका अच्छा उदाहरण संजीव इस उपन्यास में दिखाया है। अपने लघु कलेवर में यह उपन्यास आदिवासी जन-जीवन का व्यापक फलक पर चित्रांकन करता है। दिन-प्रतिदिन बढ़ते औद्योगिक विकास के साथ-साथ नष्ट होते आदिवासी जीवन की यहाँ यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। अधिकारी और पूंजीपति न केवल आदिवासियों का शोषण करते हैं, बल्कि राष्ट्रीय संपत्ति की लूट भी करते हैं। वर्तमान में निरंतर औद्योगिकीकरण के कारण जंगल और जमीन से विस्थापित होते हुए तथा विकास के नाम पर विनाश करने वाले अफसरों, नेताओं, पुलिस, पूंजीपतियों, महाजनों और दलालों के चंगुल में फँसे आदिवासियों की यथार्थ कथा इस उपन्यास में वर्णित है।

जंगल जहाँ शुरू होता है-

इस उपन्यास के केंद्र में बिहार का पश्चिम चंपारण है। इसमें थारू आदिवासियों की त्रासदी और डाकू समस्या का चित्रण है। सरकार द्वारा डाकुओं के उन्मूलन हेतु बेतिया-चंपारण में चलाये जानेवाला अभियान 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथॉन' उपन्यास का प्रमुख संदर्भ है। यहाँ डाकू समस्या प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश की देन है। जाति, धर्म, पूंजीवादी व्यवस्था, शोषण, राजनीति जैसे कई कारक यहाँ व्यक्ति को डाकू बनने पर विवश करता है। परेमा, नोनिया, परशुराम, काली, बिंदा, जगन, नारायण, नरैना और श्यामदेव आदि युवा विवशतावश डाकू बने हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु में पश्चिम चंपारण के प्राकृतिक सौन्दर्य का, मानवीय परिवेश का, इतिहास, भूगोल और समाजशास्त्र की वैविध्यपूर्ण जानकारी मिलती है। उपन्यास की भाषा थारू बोली और भोजपुरी मिश्रित हिंदी है। इस उपन्यास में थारू जनजाति की जीवन शैली, उनकी पूजा पद्धति, मेला, अखरा जातरा पर्व आदि का वर्णन है।

सूत्रधार-

इस उपन्यास में भिखारी ठाकुर के सुख-दुःख, संघर्ष, मान-सम्मान आदि जीवन की अनेक घटनाये अंकित है । भिखारी ठाकुर नाई जाति में उत्पन्न होने के कारण परम्परागत न्यौतने और ठहलुवाई का काम करते हैं । वे नौ साल की उम्र में पाठशाला में जाने पर वहाँ जातिवाद और वर्ण-व्यवस्था के कारण उच्चवर्गीय बच्चों द्वारा अपमानित होते हैं । किस प्रकार भिखारी ठाकुर अपने जीवन में अनेक संघर्षों के बावजूद सफल हुए उसका चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । इस उपन्यास के अंतिम हिस्से में कथाकार, नायक भिखारी ठाकुर के आत्ममंथन का ढेर सारा प्रसंग प्रस्तुत करते हैं । संजीव एक तरह से इस उपन्यास के कथानक पर अपनी स्वयं की एक समीक्षा दृष्टि प्रस्तुत करते हैं । सामाजिक संरचना की जटिलताओं के द्वंद्व का सामना करते, समझौते करते भिखारी के जीवन की संघर्ष यात्रा एवं कला यात्रा के बहाने समाज के बुनियादी सामंती ढांचे पर अपने अनेक व्यंगपूर्ण सवाल खड़े करते हैं ।

आकाश चम्पा-

'आकाश चम्पा' उपन्यास में संजीव हमारे समय की व्यंग्य-विडम्बना की कथा लिखते हुए मार्क्सवाद, दलितवाद, तथा पिछड़ा वर्ग के मेल के साथ हमारी इतिहास लेखन परम्परा की आलोचना करते हैं । उपन्यास का नायक मोतीलाल है, जो स्वंत्रता आन्दोलन में भाग ले चुके है । मोतीलाल आजादी के सपनो और शहीदों की कुर्बानियों की छाया में न सिर्फ जीवन और समाज में संघर्ष करते हैं बल्कि इतिहास की नई व्याख्या भी करते हैं । इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में संजीव ने जातिवाद और आरक्षण की शुरुआत का वर्णन करते हैं । संजीव इस उपन्यास के माध्यम से देश-विभाजन में नेहरु, जिन्ना विवाद को वर्णित किया है । साथ ही आजादी की लड़ाई लड़ने वाले परिवारों द्वारा आर्थिक तंगी का सामना करते हुए वेश्यावृति का भी अंकित किया है ।

कहानी-

कहानी की शुरुआत प्राचीन काल से चलता चला आ रहा है । कहानी, सुनने, पढ़ने और लिखने की एक लम्बी परम्परा हर देश में रही है क्योंकि यह पाठको के मन को सुख पहुंचाती है और सबके लिए

मनोरंजन होती है। आज हर आयु का आदमी कहानी सुनना या पढ़ना चाहता है। यही कारण है कि कहानी का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। बालक को कहानी बहुत प्रिय होते हैं। इंसान का अपना एक जीवन होता है, जिसमें उसके साथ-साथ कई तरह की घटनाएं घटती रहती है, इनमें सुखद और दुखद दोनों ही तरह की घटनाएँ होती है उन्हीं घटनाओं को जब रचनाकार लेखन की रूप में बताता है, वही 'कहानी' कहलाती है। कहानी लिखना एक प्रकार की कला है। हर कहानी- लेखक अपने ढंग से कहानी लिखकर उसमें विशेषता पैदा कर देता है। वह अपनी कल्पना और वर्णन–शक्ति से कहानी के कथानक पात्र या वातावरण को प्रभावशाली बना देता है। ऐसे ही समकालीन महान कथाकार के रूप में संजीव की कहानियाँ सामाजिक और मानवीय है। उनके व्यापक कथा–संसार में मौजूदा समय की सच्चाईयां, कहानी का उद्देश्य, कहानी कहना नहीं बल्कि यथार्थ और संबधों को संप्रेक्षित करना है। डॉ. सुरेश सिन्हा कहानी के सन्दर्भ में कहते हैं।- "कहानी लिखने के लिए कहानीकार को कहीं भटकना नहीं पड़ता। वह जो जीवन जीता है, उसी से किसी संवेदनशील घटना को चुन लेता है और इसे शब्दों में अत्यंत सूक्ष्मता एवं कुशलता से बाँधने का प्रयत्न करता है। इसके लिए अनेक उपकरण ही वस्तुत: कहानी के तत्व होते हैं, जिनसे मिलकर एक कहानी की रचना होती है।"[21] कहानी की कथावस्तु में संक्षिप्तता, मौलिकता, रोचकता, विश्वसनीयता, कुतूहलता आदि गुणों से युक्त होने पर कहानी सफल बनती है। संजीव के कथा साहित्य के बारे में मधुरेश कहते हैं - "किसी भी समकालीन वामपंथी लेखक की तुलना का सौन्दर्य स्पर्श और मार्मिकता कहीं अधिक मिलेगी। विचार की निशिचत प्रक्रिया के बावजूद, संजीव क्रिया-प्रतिक्रिया और संक्रिया के नीचे एक अंतक्रिया होती भी महसूस करता है।"[22]

निम्नलिखित उनके द्वारा रचित विवेच्य कहानी-संग्रहों की कुछ महत्वपूर्ण कहानियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

तीस साल का सफरनामा – यह संजीव का पहला कहानी संग्रह है, जिसमें नौ कहानियां हैं। इस संग्रह की पहली कहानी 'अपराध' है। 'अपराध' कहानी में सचिन और उसकी बहन संघमित्रा की त्रासदी (ट्रेजेडी) का

अंकन हुआ है । सचिन और संघमित्रा को पुलिस नक्सलाइट मानकर अत्याचार करती है । पुलिस के अमानुष अत्याचार में संघमित्रा की मौत होती है । सचिन को फाँसी की सजा होती है । सचिन का मित्र सिद्दार्थ को पछतावा होता है कि अपने पिता जज, भैया एस.पी. होते हुए भी संघमित्रा और शचिन को बचा नहीं सका । समाज में पनप रही भ्रष्ट-व्यवस्था की भंडाफोड करती है । पुलिस की भ्रष्ट-व्यवस्था और कार्य-प्रणाली तथा भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था की वस्तुस्थिति को प्रस्तुत करती है । इस कहानी के बारे में रविभूषण कहते हैं ।-"जो सत्ता और व्यवस्था में हैं और उसके साथ हैं, वही सबसे बड़ा अपराधी है । स्वतंत्र भारत में हिंदी की यह पहली कहानी थी, जिसने स्पष्ट और दो टूक स्वरों में वास्तविक अपराधी को सामने रखा ।"[23] 'अपराध' नक्सलवादी आन्दोलन पर लिखी गई कहानी है । व्यवस्था को अपराधी के कटघरे में खड़ा करने का काम पहली बार इस कहानी में बेबाफी के साथ किया गया है । सचिन और संघमित्रा प्रारंभ से ही मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है । कहानी समाज और देश के पूंजीपति, राजनेता, अफसर, डॉक्टर, वकील आदि का सच्चा रूप दर्शाती है । व्यवस्था में पुलिस दलाल बने हैं तो सत्ता के अपराधीकरण के चलते कानून व्यवस्था कमजोर बन गई है ।

'तीस साल का सफरनामा' कहानी में कुसुमपुर गाँव की कथा है । तीस साल पहले सुरजा और गजराजसिंह दोनों का परिवार किसान परिवार था, पर आजादी के बाद दोनों का जीवन बदल जाता हैं । सुरजा किसान से मजदूर बन जाता है और नम्बरदार किसान से महाजन बनता है । चकबंदी की भारी धांधली और भूमि सुधार के नाम पर किए जा रहे लूट का बेबाक चित्रण इसमें हुआ है । समकालीन भारतीय गाँव का यथार्थ चित्रण इस कहानी में परिलक्षित होता है ।

अंतत: स्पष्ट है कि इस कहानी-संग्रह में मजदूर वर्ग का शोषण तथा बेकारी का सूक्ष्म यथार्थ चित्रण परिलक्षित होता है । 'अपराध', 'तीस साल का सफरनामा' कहानियों द्वारा संजीव भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोलते हैं । ये कहानियाँ आज भी प्रासंगिक परिलक्षित होती हैं ।

आप यहाँ है - इस कहानी संग्रह में कुल दस कहानियां हैं। पहली कहानी 'जसिबहू' है जिसमें ऐसी दलित नारी का चित्रण है जिसका पति काम-काज के लिए बाहर गया हुआ है। गाँव के उच्चवर्ग के लोग उसका बलात्कार करते हैं। इस कहानी में नारी की पीड़ा तथा जातिवादी समस्या का अंकन हुआ है। इस संग्रह की सभ कहानियों में संजीव जी ने सामाजिक विभिन्न समस्याओं को दिखाने का प्रयत्न किया है।

भूमिका और अन्य कहानियाँ – इस कहानी संग्रह में भी दस कहानियां है। पहली कहानी **'**भूमिका' नेता और गुंडों के भ्रष्ट कारनामों की कहानी है। बस्ती खाली करवाने के लिए गुंडों से आग लगवाने वाला ही स्वयं धर्मात्मा बनकर रिलीफ (राहत) बांटता है। आदिवासियों के लिए काम करने आई एक सोशल एक्टिविस्ट औरत आग में एक बच्चे को बचाते-बचाते स्वयं आग में झुलस जाती है और आँख भी गंवाती है। यह औरत 'जानी' के बच्चे को पढ़ाती थी उसी 'जानी' ने उसके अंधेपन का फायदा उठाकर उसे चकलाघर पहुँचाया है। उसी औरत के सामने आज चकलाघर में आग लगाने वाले गुंडे है। ऐसी राजनीति की असलियत का पर्दाफाश करते हुए लेखक लिखते हैं- "बिना टिकट रैली के नाम पर फोकट में शहर घूम आना, पार्टी की धौंस जमाकर ट्रकवालों, दुकानदारों दारुखानों, रंडियों से पैसे झाड़ लाना, लाठी, बल्लम, छूरा, बम की बदौलत बूथ कैप्चर कर इलेक्शन जीत लेना और फिर इन्हीं के खिलाफ लिच्चर फेंक आना राजनीति है तो हम साले किस लीडर से कम है ?"[24] स्पष्ट है कि लेखक ने गुंडों के चरित्रों को कथ्य बनाया है। 'महामारी' कहानी में आदिवासी समाज में चेचक बीमारी आ जाने से आदिवासी की स्थिति, उनका अंध विश्वास, भुखमरी और गरीबी का यथार्थ चित्रण है | 'लांग साईट' कहानी में नेताओं के असली चरित्र और मजदूरों की दयनीय दशा का चित्रण है | 'जब नशा फटता है' कहानी में मैला ढोने वाली भंगी जाति का सामाजिक स्थान और दयनीय दशा का चित्रण है।

दुनिया की सबसे हसीन औरत - इस कहानी संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ है। पहली कहानी 'घर चलो दुलारीबाई' में विधवा नारी 'दुलारीबाई' के रिश्तेदार, भ्रष्ट व्यवस्था तथा न्यायपालिका द्वारा होने वाले शोषण का चित्रण है। 'दो बीघे जमीन' में रिटायर भगत की दो बीघे जमीन हड़पने के लिए उनके रिश्तेदार

तथा गाँव वालों की स्वार्थी मनोवृत्ति का अंकन किया गया है। 'वापसी' कहानी में फौजियों के व्यवहार पर प्रकाश डाला गया है। 'गो-लोक' कहानी में एक सेठ के माध्यम से पूँजीपतियों के शोषणतंत्र पर प्रकाश डाला गया है। 'चुनौती' कहानी में कारखाने में काम करने वाले मजदूरों तथा कारखाना मालिकों के संघर्ष का वर्णन है। 'शिनाख्त' कहानी में पुलिस विद्यार्थियों को नक्सलाईट मानकर पकड लेती है तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार करती है, इसी का चित्रण किया गया है। 'नेता' कहानी के माध्यम से संजीव ने स्वार्थी तथा भ्रष्ट नेताओं की पोल खोलने का प्रयास किया है।

प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ - इस कहानी संग्रह में बारह कहानियाँ है। पहली कहानी 'प्रेरणास्रोत' है, जिसमें स्त्री के स्वाभिमान और अधिकार का वर्णन है। 'अल्लारक्खा दरगाह और मूरते' कहानी में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं का चित्रण है। 'माँद' कहानी में सामंती संस्कारों से ग्रस्त एक साहूकार की मानसिकता का अंकन है। 'कुछ तो होना चाहिए न' लंबी कहानी है। इसमें साहित्यकारों का दल सामाजिक यथार्थ को लेकर चर्चा करता है। इस कहानी में यथार्थ को परखने के अलग-अलग रूपों को बताया है। 'कदर' कहानी एक ऐसे बंधुआ मजदूर की कथा है, जो कि मालिक द्वारा बार-बार अपमानित किया जाता है। मेहनत की कदर नहीं होती तब मजदूर अपने मालिक के खिलाफ विद्रोह करता है। 'नकाब' कहानी में संजीव ने सामाजिक विषमताओं को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया है। 'आहट' कहानी में फिल्मों में अभिनय करने वाले कलाकार पैसा, प्रसिद्धि पाने के लिए उपभोक्तावादी संस्कृति के सामने मजबूर बनते है। पैसे के लिए क्या कुछ नहीं किया जाता, इसे चित्रित किया है। 'कन्फ्यूजन' कहानी में फौजी सिपाही की कथा है। इस कहानी में सिपाही जब दिया हुआ कोड वर्ड भूल जाते है तो एक-दूसरे को दुश्मन समझकर मार डालते हैं।

प्रेतमुक्ति - इस कहानी संग्रह में कुल चार लंबी कहानियाँ है | पहली कहानी 'प्रेत-मुक्ति' तीस पृष्ठों की लम्बी कहानी है। इससे गाँव के मुखिया और उसके बेटे के आतंक से डरे हुए लोगों का चित्रण है। 'मैं चोर हूँ, मुझ पर थूको' कहानी में पुलिस के द्वारा महिलाओं का यौन शोषण तथा पुलिस की भ्रष्ट और बर्बर वृत्ति का

अंकन हुआ है। 'मक्तल' छत्तीस पृष्ठों की लंबी कहानी है। इस कहानी में दफ्तर में काम करने वाले क्लर्क की मानसिकता, चाटुकारिता, कामचोरी आदि का चित्रण हुआ है। 'तिरबेनी का तडबन्ना' छत्तीस पृष्ठों की लंबी कहानी है। इस कहानी में गाँव के ठाकुर द्वारा दलितों का शोषण दर्शाया गया है। इसके साथ ही नक्सली संगठन और विचारधारा से प्रभावित लोगों का चित्रण भी हुआ है।

ब्लैक होल - इस कहानी संग्रह में बारह कहानियाँ है। पहली कहानी 'ब्लैक होल' है में मध्यमवर्गीय परिवार की स्थिति का वर्णन है। इस कहानी में संजीव ने यह समझाने का प्रयास किया है कि बच्चों पर परीक्षा में अधिक अंक लाने का दबाव नहीं डालना चाहिए, इससे बच्चों का आत्मविश्वास कमजोर हो जाता है तथा वे आत्महत्या कर लेते हैं। 'नस्ल' कहानी में एक ऐसे युवक की कथा है जो कि बहुराष्ट्रीय कंपनी में अच्छी नौकरी पाकर अपने माता-पिता तथा रिश्तेदारों को महत्त्वहीन समझने लगता है। 'कन्फेशन' कहानी में कोयला उद्योग के निजीकरण, राष्ट्रीयकरण वहाँ पनप रहे भ्रष्टाचार और मजदूरों की स्थिति का चित्रण है। 'काउंट डाउन' विज्ञान विषयक कहानी है। इस कहानी की भाषा में वैज्ञानिक तकनीकी शब्दों की अधिकता है। इसमें पृथ्वी और मानव जाति के अस्तित्व से जुड़े बिन्दुओं का चित्रण किया गया है। 'हिमरेखा' कहानी में पहाड़ी संस्कृति तथा वहाँ के रीति-रिवाज, परम्परा, विवाह प्रथा आदि का चित्रण किया गया है।

डायन और अन्य कहानियाँ – इस कहानी संग्रह में बारह कहानियां हैं। इस कहानी संग्रह की प्रथम कहानी 'डायन' है। लेखक ने समाज में नारी को किस किस रूप में देखा जाता है इसका सुन्दर उदाहरण इस कहानी में देखने को मिलता | अन्य संग्रह की तुलना में इस संग्रह की सभी कहानियां कुछ अलग पहचान लेकर सामने आयी है।

खोज - इस कहानी-संग्रह में कुल नौ कहानियाँ है। संग्रह की पहली कहानी 'लिटरेचर' है। यह अट्ठाइस पृष्ठों की लंबी कहानी है। संजीव ने इस कहानी द्वारा बाजार का भयानक षड़यंत्र और लिटरेचर के दुरूपयोग पर प्रकाश डाला है। इस कहानी में पेड़-पौधों से भरी जंगली जड़ी-बूटियों का वर्णन किया गया है। 'मदद' कहानी में हिन्दू और मुस्लिम संप्रदाय की दो नारियाँ पुरूष प्रधान संस्कृति के खिलाफ प्रतिरोध करती है।

तब दोनों धर्मों के लोगों द्वारा सताई जाती है । संजीव ने इस कहानी में सांप्रदायिक मानसिकता को उजागर किया है- कोई नारी पति को तलाक देती है तो धर्म विरूद्ध हो जाता है। कोई नारी पति के गलत कृत्यों पर सवाल उठाती है तो वह धर्म विरोधी हो जाती है, इस सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला है। 'पूत-पूत! पूत-पूत!!' पैंतीस पृष्ठों की लंबी कहानी है। इस कहानी में नक्सलवादी आंदोलन और संगठन की वर्तमान स्थिति को दर्शाया गया है। जिस नक्सलवादी आंदोलन का जन्म पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने के लिए हुआ था, बाद में वह कमजोर हो गया तथा अपने मूल उद्देश्य से भटक गया। नक्सलवादी आन्दोलन की इसी स्थिति को चित्रित किया गया है।

गति का पहला सिद्धांत - इस कहानी संग्रह में आठ कहानियाँ है । संग्रह की पहली कहानी 'उष्मा' है जिसमें जमींदार अपने नौकर तथा उसकी पत्नी का शोषण करता है । इस कहानी में बंधुआ मजदूर की तरह रहने वाले पति-पत्नि में भ्रष्ट जमींदार के खिलाफ प्रतिरोध की भावना को चित्रित किया है । 'मरजाद' कहानी में गाँव का प्रधान पिछडी जाति का है । वह गाँव के उच्चवर्गीय व्यक्तियों के इशारे पर काम करता है। प्रधान की पत्नी शांता गाँव में समाज सेवा का काम करती है । शांता ग्राम पंचायत के चुनाव में पति और उच्चवर्ग के लोगों के खिलाफ खड़ी होकर मरजाद को तोडती है । इस कहानी में शांता के रूप में औरत के विद्रोह का चित्रण है । 'कचरा' रिश्तों से ज्यादा जिन्दगी में धन, संपत्ति महत्वपूर्ण मानने वाले एक स्वार्थी युवक की कहानी है । 'हत्यारे' कहानी में बड़ी-बड़ी तेल कम्पनियों द्वारा हरे-भरे द्वीपों को नष्ट करने तथा प्रकृति को नुकसान पहुंचाने का दर्शाया गया है। कंपनियों द्वारा तेल प्राप्त करने की होड में खतरनाक आयुध के प्रयोग को भी चित्रित किया गया है । 'गति का पहला सिद्धान्त' कहानी में भारतीय हिन्दू मान्यताओं को दर्शाया गया है। वानर, गाय को मारना पाप है, देवी देवता का कोप लग जायेगा, देवताओं के डर से मारे इन जानवरों से होने वाले नुकसान को भी सहन किया जाता है, इसी का वर्णन है । 'बीहड' सितबादेवी के डाकू बनने के कारण तथा उसके ऊपर हुए अत्याचार शोषण, और उत्पीड़न का बदला लेने, सितबादेवी का अपराध सही था या गलत यह तय करने वाली कहानी है । 'डेढ सौ सालो की तन्हाई' कहानी में लंदन स्थित भारतवंशी रामजे के जीवन पर प्रकाश डालती है ।

गुफा का आदमी- इस कहानी-संग्रह में दस कहानियाँ हैं। इस संग्रह की पहली कहानी 'ज्वार' है। इस कहानी में देश-विभाजन के समय धर्म परिवर्तन को दर्शाया गया है। 'बुद्धपथ' कहानी में लेखक ने बताया कि मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर के विवाद से देश में सांप्रदायिक हिंसा के कारण अनेक लोग मर रहे हैं। पीढ़ियाँ बरबाद हो रही है। अतः लेखक बुद्धपथ को अपनाने का सदेश देते है। 'ख्याल उत्तर आधुनिकी' कहानी में प्रेमी-युगुल के माध्यम से लेखक ने उत्तर आधुनिकता की चर्चा की है। आज प्रेमी युगुल नीति, नियन, सिद्धांत और नैतिकता को त्यागकर प्रेम करते हैं लेकिन अपनी आजादी खोना नहीं चाहते। अपने आनन्द और अपनी स्वतंत्रता को छोड़कर किसी दूसरे के प्रति वफादार नहीं रहते। इस कहानी के माध्यम से संजीव ने पथभ्रष्ट होते युवाओं को चित्रित किया है। 'दस्तुर' कहानी में ऊँचे खानदान राजघरानों में झूठी शान तथा सम्पत्ति को लेकर संघर्ष का अंकन किया है। दूसरी ओर राजघरानों में राजा अनेक रखैल रख सकता है, इसी दस्तुर को लेखक ने चित्रित किया है। 'राख' कहानी में जोखनबहू की अपमानित, उपेक्षित तथा शोषित जिंदगी का वर्णन है। 'गुफा का आदमी' कहानी में गुफा की तरह जिंदगी जीने वाले तैयबचा ओर आदिवासी नारी सोमा का विरह प्रेम तथा त्रासदी को चित्रित किया गया है।

2.2. यथार्थबोध: अवधारणा एवं स्वरूप-

'यथार्थ' का अर्थ है यथा+अर्थ यानी जैसा है उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना है। 'यथार्थवाद' मूलतः दर्शन के क्षेत्र का शब्द है जहाँ से साहित्य व कला के क्षेत्र में ले लिया गया है। हिंदी में 'यथार्थवाद' कहते हैं और यह अंग्रेजी में रियलिज्म, (realism) के अनुवाद के रूप में प्रस्तुत होता है। इस शब्द को दर्शनशास्त्र के सिद्वांत के रूप प्रस्तुत करने वाले प्रथम दार्शनिक प्लेटो थे। 'रियल' शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के 'रेस' में मानी जाती है, जिसका अर्थ वस्तु है अत: 'रियलिज्म' का अर्थ वस्तु संबधी विचार धारा है। जीवन की सच्ची अनुभूति 'यथार्थ' है और जब इसका अभिव्यक्तिकरण कलात्मक ढंग से होता है, तो वह 'यथार्थ' कहलाता है। 'यथार्थवाद' एक आन्दोलन के रूप में 19 वी सदी में फ्रांस में प्रगट हुआ। विज्ञान ने तमाम पुरानी मान्यताओं और रुढियों को एक झटके में समाप्त करके मनुष्य को यथार्थ की ठोस जमीन पर खड़ा कर

दिया। 'यथार्थ' से अभिप्राय समाज की यथास्थिति का चित्रण करना, दूसरे शब्दों में समाज जैसा हो वैसा ही उसका यथार्थ चित्रण किया जाये । अर्थात सामाजिक विषमताओं, पिछड़े वर्ग पर होने वाले अन्याय-अत्याचार, शोषित लोगों की वेदना, भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास, धार्मिक आडंबर, गरीबी तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रांत आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं से संत्रस्त समाज का यथार्थ चित्रण करना है । संक्षेप में समाज की विविध परिस्थितियों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ है। डॉ. त्रिभुवन सिंह यथार्थ के बारे में लिखते हैं -"जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है।"[25] यथार्थ के बारे में भगवतीचरण कहते हैं- "यथार्थ वह सब है जो इस विश्व में स्वाभाविक रूप से घटित होता रहता है, जहाँ बुद्धि का अनुशासन नहीं है। यथार्थ मूल रूप में मानव के अस्तित्व का सत्य है।"[26] यथार्थ और यथार्थवाद में कोई सैद्धांतिक भेद नहीं है। यथार्थवाद का प्राण यथार्थ है यथार्थ और यथार्थवाद के बारे में डॉ. त्रिभुवनसिंह कहते हैं –"यथार्थ और यथार्थवाद के बीच एक निश्चित भेदक रेखा का खींचना अत्यंत कठिन है । यथार्थवाद, यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो साहित्यकार मानव-जीवन एवं समाज का सम्पूर्ण वास्तविक संसार से लेता है, उसे ही हम यथार्थवादी लेखक कह सकते हैं।"[27] वास्तव में यथार्थ एक व्यापक तथ्य है, जिसमें मानव समाज के सभी तत्व विद्यमान हैं। यथार्थवाद साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा है।

2.2.1. यथार्थ के विविध प्रकार -

साहित्यकार समाज के यथार्थ रूप को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित करता है। साहित्य यदि एक सामाजिक संस्था है तो साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी। साहित्यकार की कृतियाँ सामाजिक एवं उसके परिवेश को प्रभावित करती है। समाज के सभी पक्षों यथा- राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि का वास्तविक चित्रण कथा साहित्य एवं उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत सशक्त रूप में मिलता है। एक सशक्त एवं प्रबुद्ध उपन्यासकार समाज के इन्हीं विभिन्न सोपानों की कसौटी पर यथार्थ का चित्रण करता है। साहित्य के अन्तर्गत आने वाले यथार्थ के विभिन्न सोपानों का संक्षिप्त वणर्न निम्नलिखित है –

सामाजिक यथार्थ-

सामाजिक यथार्थ समाज की सम्पूर्णता वस्तुस्थिति का, चाहे वह किसी भी रूप में विद्यमान है, वास्तविक बोध है। वास्तविकता का यह बोध ज्ञान की उस आधारशिला पर प्राप्त होता है। जिस पर समाज की नीवं टिकी होती है। सामाजिक यथार्थ चित्रण किसी सामाजिक प्राणी का भी हो सकता है और समाज की किसी घटना का भी, जिससे समाज प्रभावित हो। सामाजिक यथार्थ में समाज के सूक्ष्म तत्व का भी विवचेन होता है। व्यक्ति, परिवार एवं वर्गों के सामंजस्य से ही समाज का निर्माण होता है। इनके बिना समाज का अपना कोई अस्तित्व नहीं माना जा सकता। अतः समाज के संगठित तत्वों के रूप में स्थापित इन इकाइयों का चित्रण भी सामाजिक यथार्थ साहित्य में समाज की वास्तविक स्थिति का बोध कराता है, जिसका निर्माण व्यक्ति एवं समाज के मिले-जुले परिवेश के बहुआयामी संघर्ष से होता है। साहित्य व्यक्ति से समाज का सम्बन्ध निर्धारित करता है।

परशुराम शुल्क विरही के अनुसार- "सामाजिक यथार्थवादी समाज की वास्तविकता का ऐसा चित्रण प्रस्तुत करता है कि पाठक समाज में होनें वाले विभिन्न व्यापारों के औचित्यानौचित्य को सरलतापूवर्क समझ सकें और एक आदर्श समाज–व्यवस्था की ओर प्रवृत्त हो सके। सामाजिक यथार्थवाद को आद्शोर्न्मुख यथार्थवाद भी कहा गया है।"[28] सामाजिक यथार्थ की परिभाषा हिंदी साहित्यकोश में इस प्रकार है- "वह सामाजिक यथार्थ व्यकितगत पक्ष के साथ–साथ सामाजिक पक्ष का भी उद्घाटन करनें में विश्वास करता है। सामाजिक यथार्थ के भीतर वे शक्तियां आती है, जो मानव मस्तिष्क से बाहर है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, संस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का समुच्चय ही सामाजिक यथार्थ है। ये शक्तियां मिलकर उस सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है। जिसमें संस्कारों का सृजन होता है।"[29] सामाजिक यथार्थ में समाज के अच्छे-बुरे दोनों पक्षों का तटस्थ दृष्टि से चित्रण किया जाता है। वह समाज की प्रत्येक आधारभूत इकाई से जुड़ा हुआ है। यथार्थवादी साहित्यकार सूक्ष्मता से समाज और

उसकी स्थितियों का चित्रण सामाजिक यथार्थ के बल पर करता है। इसका वास्तविक चित्रण ही सामाजिक यथार्थ कहलाता है।

राजनैतिक यथार्थ -

राजनीति प्रत्येक युग को प्रभावित करती रहती है। आधुनिक युग के हर क्षेत्र में राजनीति का बालेबाला है। धर्म, शिक्षा, समाज के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी राजनीतिकरण अपने पाँव पसार रहा है। साहित्यकार की संवेदनशीलता उसे साहित्य में राजनीति से जुड़े कटु सत्य को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है। वर्तमान यगु में प्रत्येक राजनीति दल अपनी स्वार्थपूर्ति में लगा हुआ है। आज जनता के दुःखों से उसे कोई सरोकार नहीं। ऐसा लगता है कि सता के लोभी नेताओं ने अपनी संवेदनाओं को गहरी खाई में धकेल दिया है। आलिशान बंगले में रहना और शानौशौकत का जीवन व्यतीत करना ही राजनेताओं का एकमात्र आदर्श बन चुका है। बड़े-बड़े वादों से आम जनता को छलना उनका पिय्र खेल बन चुका है।

समाज और राजनीति का घनिष्ट सम्बन्ध है। समाज को चलाने में राजनीतिक यथार्थ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनीति वैयक्तिक जीवन का अंग बन चुकी है। व्यक्ति एवं समाज से संबधित होने के कारण इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। डॉ. पुष्यपाल सिंह के मतानुसार- "आज का लेखक राजनीति को अपने लेखन से अलग करके इसीलिए नहीं देख सकता क्योंकि उसके जीवन यथार्थ की स्थितियों को गढ़ने में राजनीति का बहुत बड़ा हाथ है। इसीलिए राजनीतिक जीवन के छल छंद को कथा साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है।"[30] राजनीतिक यथार्थ पर प्रकाश डालते हुए प्रकाशचंद गुप्त लिखते हैं - "राजनीति जनता के हितों की रक्षा करती है और साहित्य में भी उसी का स्वर देती है। यह दुनिया में विशेष रूप से भारत में शकित, जनतंत्र करने वाले कला और साहित्य आज की परिस्थिति में प्रगतिशील कला और साहित्य है।"[31]

आधुनिक युग में अस्थिरता का कारण वर्तमान भ्रष्ट राजनीति है। राजनेता अपने निजी स्वार्थो के लिए जनता के हितों को ताक पर रख देते हैं। जिससे जनता इन नेताओं को संदेह की दृष्टि से देखती है।

रिश्वत और भाई-भतीजावाद ने योग्यता एवं कार्यकुशलता को पीछे धकेल दिया है । यही स्वार्थ केन्द्रित राजनीति का यथार्थ रूप वर्तमान साहित्य में दिखाई पड़ता है।

धार्मिक यथार्थ -

धर्म का सम्बन्ध पवित्रता के साथ है लेकिन आधुनिक यगु में धर्म की आड़ में कुछ शरारती तत्व अनैतिक कार्य करने में लगे हुए हैं। मन्दिरों में ईश्वर के भजन के स्थान पर अनैतिक कार्यों का बोलबाला है। पुजारियों का, महन्तों का आरै धर्मगुरुओं का जीवन भयानक विलासिता से भरा हुआ है। वे मंदिरों की आड़ में जघन्य से जघन्य कर्म करते नहीं शर्माते। ईश्वर को गाना सुनाकर खुश करने के लिए उन्हें वेश्याएँ चाहिए। इस बहाने से वे अपनी राक्षसी कामना को पूर्ण करते हैं और अपने जीवन को विलास-वासना और पतन के गहरे गड्डे में डाल देते हैं, तिस पर भी हिन्दू-समाज के लिए वह पूज्य हैं, माननीय हैं, और देवता तुल्य हैं क्योंकि वे पुजारी हैं, महन्त हैं और धर्म गुरु हैं।प्राचीनकाल में धर्म मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता है परन्तु वर्तमान समय में धर्म जादू-टोनों तथा तंत्र-मंत्र का पयार्य बन चुका है । धार्मिक क्षेत्र में आई कुरीतियों के कारण आम आदमी की धर्म के प्रति आस्था अनास्था में बदल गई है । धर्म पर अपना सब कुछ न्यौछावर करने वाले लोग ही अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए धर्म को बदल रहे है। धामिर्क क्षत्रे में आई इन्हीं कुरीतियों का साहित्य के माध्यम से वास्तविक चित्रण करना धार्मिक यथार्थ कहलाता है।

आर्थिक यथार्थ-

अर्थ ही मानव जीवन को अर्थवान बनाता है । प्राचीन काल में मानव की प्रतिष्ठा उसके गुणों के आधार पर टिकी हातेी थी, परन्तु वर्तमान युग में वही व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है जिसके पास धन है। धन की कमी मनुष्य के जीवन में अनेक समस्याएँ खड़ी कर देती है। आज भारत में गरीबी, बरेाजेगारी, अशिक्षा, वेश्यावृति जैसी अनेक समस्याएँ हैं जिसका कारण अर्थ की कमी का होना है। भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यहाँ अमीर आदमी अधिक अमीर आरै गरीब आदमी अधिक गरीब होता जा रहा है। अमीर-गरीब के बीच की खाई गहरी हातेी जा रही है। आज का साहित्यकार ऐसी व्यवस्था का

पक्षधर है जिसमें अमीर-गरीब सब समान हों। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का समथर्क कार्ल मार्क्स को माना गया है, जिसने अपने विचारों से दुनियाभर के विद्वानों को प्रभावित किया। मार्क्स की साम्यवादी नीति ने साहित्यकारों को भी अत्यधिक प्रभावित किया। हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में शोषित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग का सजग साहित्यकार भी अपनी रचनाओं में आर्थिक असमानता का शिकार हुए लोगों का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करने की कोशिश में लगा हुआ है, यही आर्थिक यथार्थ है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थ-

मनुष्य का व्यक्तित्व दो प्रकार का होते हैं - बाहरी व्यक्तित्व व आन्तरिक व्यक्तित्व। सामान्यतः हम व्यक्ति के बाहरी व्यक्ति को देखते हैं और समझते हैं जो कि व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व से बिल्कुल अलग हाता है। साहित्य केवल बाहरी व्यक्तित्व को चित्रित करके अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है, उसमें आन्तरिक व्यक्तित्व (मनोवैज्ञानिक यथार्थ) का प्रस्तुतीकरण भी आवश्यक होते हैं। इस प्रकार वह यथार्थ जिसमें व्यक्ति के आन्तरिक (मानसिक) भावों, विचारों, विकारों आदि का वर्णन किया जाए उसको हम मनोवैज्ञानिक यथार्थ कहते हैं। आज पाश्चात्य साहित्य जगत में व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक विचारधारा प्रमुख रूप से आ रही है। इस कार्य में फ्रार्यड, एडलर आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने व्यक्ति के अन्तर्मन की विकृतियाँ, प्रमाद, कुण्ठाओं तथा सामान्य-असामान्य व्यवहार तथा यानै-सम्बन्धों को अपने साहित्य में विशेष स्थान दिया है। भारतीय मनोविज्ञान के क्षत्रे में प्रेमचंद, जैनेंद्र, इलाचन्द्र जोशी एवं अज्ञेय आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अतः मनोवैज्ञानिक यथार्थ से अभिप्रायः उन मानसिक परिस्थितियों से जो एक विशिष्ट काल में एक व्यक्ति को अप्रत्याशित आचरण के लिए बाध्य कर देती है।

सांस्कृतिक यथार्थ-

सांस्कृतिक शब्द की व्युत्पति 'संस्कार' से हुई है। संस्कार 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में 'धन' प्रत्यय लगाने से बनता है जिसका अर्थ है सुधारना या परिष्कृत करना है। धीरेन्द्र वर्मा संस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय मानने हुए लिखते है, "संस्कृति शब्द सामाजिक प्रथा का पर्याय है।"[32]

संस्कृति मानव जाति को सुसंस्कृत, सभ्य एवं राष्ट्र को एकसूत्र में पिरोने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। संस्कृति ही मानव को अन्य प्राणियों से अलग करती है और मानव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी सिद्ध करती है। मोक्ष, निर्वाण एवं भक्ति संस्कृति के ही रूप है। भारतीय सांस्कृतिक में पितृ–मातृ भाव और सभ्य आचरण को महत्वपूर्ण माना है। भारतीय सांस्कृति में धार्मिक रीति-रिवाज, देवी देवताओं की पूजा आदि को बहुत महत्व दिया गया है। भारतीय संस्कृति में अनेक मान्यताएं हैं। जो भारतीय सांस्कृति को अन्य संस्कृतियों से जो अलग करती है तथा श्रेष्ट साबित करती है।

संस्कृति को काव्य अथवा साहित्य के धरातल से उठाकर विज्ञान के धरातल पर परखने का श्रेय मानव- को है। मानव विजान की प्रथम स्थिति में समय समय पर ऐसे समाजों के विवरण मिलते हैं, जिनके सम्बन्ध में पर्यटकों अथवा अन्वेषकों द्वारा यह कहा गया था कि वे पूर्णत: भाषा सदाचार, धर्म, विवाह, शासन अथवा अगिनविहीन थे, किन्तु वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा स्पष्ट हो गया है कि ऐसे विवरणों में कल्पना और अतिरंजना ही अधिक थी, सत्य कम 'हमारी संस्कृति का मूल स्रोत कृषि है। हमारा सारा सांस्कृतिक प्रसार कृषि और ग्रामजीवन में ही परिव्याप्त है। मनुष्य के रूप में, सामाजिक सदस्य के रूप में वह जो करता है, सोचता है, वह सब जटील सांस्कृतिक चक्र में बधां है। सांस्कृति का वह आधार है, जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथाएँ एवं परंपराए सीखता है। संस्कृति इस समाज की एक विरासत है।संस्कृति किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों, सामाजिक संबंधों एवं मानवीय दृष्टि से प्रेरणादायक तत्वों की सृष्टि को कहते हैं। संस्कृति साहित्य के समान समाज की धरती पर उगने वाला फूल है, जो खदु सुगन्धित है और दूसरों को भी सुगन्धित करता है। संस्कृति रूपी भित्ति के आधार पर ही उच्च

साहित्य की सृजन संभव है। संस्कृति मानव के जीवन एवं व्यक्तित्व को संपुष्ट करती है। सहिष्णुता एवं समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

पारिवारिक यथार्थ-

परिवार के निर्माण का मूल आधार भावनात्मक हातो। व्यक्ति को समाज से, समाज को व्यक्ति से बांधने का तथा एक दूसरे के प्रति अपना दायित्व समझने-समझाने का महत्वपूर्ण कार्य एक परिवार द्वारा ही सम्भव है। यदि हम साहित्य में पारिवारिक यथार्थ को स्थान नहीं देंगे तो हमारा साहित्य इतना प्रभावी नहीं बनेगा जितना साहित्य को परिवार के साथ जोड़ने से बनता है। इसलिए पारिवारिक यथार्थ को मूल रूप से चित्रित करना आवश्यक है। परिवार ही समाज की मूल केन्द्रीय इकाई है। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि समाज के निर्माण में व्यक्ति, परिवार आरै वर्ग की सक्रियता आवश्यक होती है। साहित्य और समाज परस्पर साथ-साथ चलते हैं। दोनों का एक-दसूरे से अलग अस्तित्व संभव नहीं है। ठीक उसी प्रकार साहित्य और यथार्थ को भी अलग नहीं किया जा सकता। जो साहित्य यथार्थ के जितना अधिक निकट होता है वह उतना ही प्रभावशाली हातो है। समाज की परिस्थितियों, सफलताओं, दुर्बलताओं का वास्तविक प्रस्तुतीकरण ही यथार्थ कहलाता है। सामाजिक यथार्थ में मानव मन की विक्षिप्ताओं का चित्रण होता है और उसके उल्लासपूर्ण क्षणों का भी। अंततः यह कहा जा सकता है कि साहित्य व यथार्थ एक-दसूरे की जीवनधारा है। किसी एक अभाव में दूसरे का जीवन संभव नहीं है। जो साहित्यकार अपने साहित्य में यथार्थ को जितना अधिक महत्त्व देता है उसका साहित्य उतना ही अधिक परिष्कृत होता है।

2.2.2. यथार्थ और यथार्थवाद का सम्बन्ध:

सम्बन्ध की दृष्टि से यथार्थ और यथार्थवाद एक दूसरे के पूरक ठहरते हैं। 'मार्क्सवाद' एवं 'प्रकृतवाद' में इस सम्बन्ध की अन्योन्याश्रयता का स्रोत निहित है। 'जोला' ने प्रकृति और समाज की निजी व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते हुए यथातथ्य चित्रण की और संकेत किया है। पर कला की दृष्टि से उसकी

यह निष्पति शंका के लिए भूमि प्रस्तुत कर देती है। सामान्यतः यथार्थ और यथार्थवाद में कोई सैद्धांतिक अथवा व्यवहारिक निश्चित भेदक रेखा का खींचना अत्यन्त कठिन है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। यथार्थवाद, यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यथार्थ वह है जो साहित्य में समाज को वास्तविक चित्रण के रूप में प्रस्तुत करता है। इसलिए यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में मानव-समाज और जीवन का जो चित्रण करता है वह भौतिकवादी जगत होता है। जिसकी यथार्थ सत्ता है। वह साहित्य को जीवन तथा समाज के लिए एक सषक्त माध्यम मानता है। यथार्थ साहित्य में वास्तविकता के रूप में होता है और यथार्थवाद उस यथार्थ साहित्य को एक विषिश्ट वैचारिक अर्थ प्रदान करता है।

2.2.3. यथार्थ और साहित्य का संबंध-

यथार्थ और साहित्य का घनिश्ठ सम्बन्ध है। यथार्थ का मूल लक्ष्य जीवन और जगत को तटस्थ और निष्पक्ष रूप में देखना तथा उसी रूप में चित्रित करना है। इस प्रकार यथार्थ सत्यनिष्ठा एवं निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति पर बल देता है। वास्तविक जगत के यथार्थ और साहित्यिक यथार्थ में अन्तर है। साहित्य तद्वत् निर्जीव चित्र कभी भी प्रस्तुत नहीं कर सकता और न हमें ऐसे चित्रों की आशा करनी चाहिए। यदि जो कुछ वर्तमान है हम उसे उसी रूप में देखना चाहेंगे, तो बहुत-सी ऐसी गन्दी और घिनौनी वस्तुएँ सामने आ जाएँगी जो नहीं आनी चाहिए। इसलिए ''साहित्यकार अपनी अनुपम चित्रोपमता तथा अनुभूतियों के सद्वत के द्वारा जो वास्तविक मानव जीवन का चित्र खींचता है, उसे यथार्थ कह सकते हैं।''[33]

यथार्थ साहित्य में वैज्ञानिक दृश्टिकोण को स्वीकार करता है। वह पूर्वाग्रह और प्रशस्ति से दूर रहकर समाज को उसी रूप में चित्रित करता है, जैसा वह अनुभव करता है। उसके इस कलात्मक निरूपण में सत्य विकृत नहीं होता। यही उसकी मूल भावना है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ''साहित्य में जो यथार्थ प्रस्तुत किया जाता है, वह मानवीय चेतना की परिधि में आने वाला यथार्थ है, अनुभूत यथार्थ है, जो हमारे बोध का हिस्सा है।''[34]

यथार्थ और साहित्य के अन्तरसम्बन्धों को लेकर हुए विचार-विमर्ष और विवादों तथा साहित्यिक आलोचना में विभिन्न दृष्टिकोणों के बावजूद यह तो स्वीकार किया जाता रहा है कि ''साहित्य बल्कि सभी कला रूप यथार्थ की पहचान और संप्रेषण की संवदेनात्मक प्रक्रिया है।''[35]

मानव समाज परिवर्तनशील है। समाज में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं जिसका हमारे जीवन और हमारे क्रियाकलापों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। साहित्य इससे निष्पक्ष होकर नहीं रह सकता। साहित्य यथार्थ की प्रतिकृति है और यथार्थ साहित्य को समकालीन परिवेश से जोड़ता है। साहित्य में जीवन से जुड़े यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। साहित्य सदैव समाज की बदलती हुई सम-सामयिक परिस्थितियों से स्पंदित और सजीव होता है और समाज को सन्मार्ग का प्रदर्शन करता है।

मानव जीवन को श्रेष्ठ तथा सुंदर बनाना साहित्य का लक्ष्य है इसलिए साहित्य में कल्पना का योग आवश्यक है, किन्तु वह यथार्थ पर आधृत होना चाहिए। कल्पना की अतिशयता साहित्य को अग्राह्य बना देती है। इसका उदाहरण छायावादी काव्य है। ''ज्यों-ज्यों उसमें कल्पना बढ़ती गई, उस काव्य का स्तर नीचे खिसकता गया और अंततः कल्पना की अतिशयता ही उसके पतन का कारण बनी।''[36] साहित्य का अर्थ ही होता है- हित करने वाला। यदि साहित्य समाज में घटित सभी घटनाओं का यथावत् वर्णन करने लगेगा तो वह समाज हित से अहित अधिक करेगा। यथार्थ होने पर भी वह निंदित होगा। साहित्यिक समीक्षा के उन्नायक डॉ. सेमुअल जानसन ने यथार्थ नैतिक और सार्वभौमिकता से युक्त साहित्य को श्रेष्ठ साहित्य स्वीकार किया है। यथार्थ से उनका आशय सत्य के अंकन से है। उनके विचार में जीवन का सत्य अनुभूति की सच्चाई और ईमानदारी है, क्योंकि जब तक साहित्यकार स्वंय जीवन की गहराई में जाकर जीवन को नहीं भोगेगा तब तक उसकी अभिव्यक्ति भी प्राणवान नहीं हो सकती। उन्होंने इस तथ्य पर भी बल दिया है कि साहित्यकार को अपने दायित्व का निर्वाह समाज में प्रचलित नैतिक मूल्यों के अनुसार करना चाहिए। ऐसे चित्रण के समय साहित्यकार की दृश्टि व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत होनी चाहिए क्योंकि साहित्य में किसी वस्तु-विषेश के विवरण के स्थान पर उसके समग्र एवं सार्वभौम स्वरूप का चित्रण होना

श्रेयस्कर है। इस आधार पर डॉ. जानसन ने श्रेष्ठ साहित्यिक रचना में यथार्थ, नैतिक और सार्वभौमिकता का समन्वय आवश्यक माना है। इसी को प्रेमचन्द के शब्दों में 'आइडियलिस्टिक रियलिज्म' कह सकते हैं।

अरस्तु ने अपने ग्रंथ 'पोइटिक्स में ''साहित्य को सार्वभौम सत्य की अभिव्यक्ति कहा है। उनके अनुसार काव्य कोष अनुकरण न होकर 'पुनर्सृजन' है। वह समाज की न्यूनताओं को हटाकर एक सुंदर संसार की सृष्टि करता है। साथ ही, वह संभावना और संभावित के सिद्धांत के अनुसार समाज को नई वस्तुओं से संपन्न करता है।''[37] इस प्रकार साहित्य यथार्थ पर आधृत होता है वह समाज के समानांतर एक रम्यतर समाज की रचना करता है। यह रचना सहृदय को आनंद की प्राप्ति करने के साथ ही उसे मानवीय मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा भी देती है।

जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है। समाज और यथार्थ का संयम प्रत्येक उत्तरदायी साहित्यकार को स्वीकृत करना चाहिए। समाज और समय के उत्थान और पतन, विकास और ह्रास, महान और हीन सभी की झाँकी साहित्य में आनी उचित है। श्रेष्ठ साहित्य स्वभावतः युग-जीवन के तत्वों से गठित होता है। वह अपने समय के सामाजिक यथार्थ को प्रकट या प्रतिफलित करता है। उसी प्रकार वह युग-जीवन का दिशा-निर्देश भी करता है और युग-जीवन को बदलने का अस्त्र भी बन जाता है।

स्पष्टत: समाज एवं यथार्थ साहित्य के अनिवार्य उपजीव्य हैं, इनको सम्यक् और उचित रूप में ग्रहण करना आज के साहित्यकार के लिए परम अनिवार्य है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यथार्थ और साहित्य का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यथार्थ साहित्य को समय और युग की सच्चाईयों से सम्बद्ध करता है। किसी भी रचना की जीवंतता और मूल्यवत्ता उसमें निहित यथार्थ दृष्टि पर निर्भर करती है। यथार्थ दृष्टि से प्रेरित होकर साहित्यकार समकालीन समाज के विविध पक्षों पर दृष्टिपात करते हुए सत्य को रेखांकित करता है।

2.2.4. यथार्थबोध: मानव-जीवन के विविध सन्दर्भ -

सृष्टि के समस्त प्राणियों में बौद्धिक धरातल पर मानव की स्थिति सर्वश्रेष्ठ है। आदि जीवन से मानव की ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा उसे ज्ञानपिपासु बनाए हुए हैं। उसकी प्रकृति किसी भी वस्तु के रूप- स्वरूप को नेत्रेन्द्रियों के माध्यम से देखकर अथवा श्रवण शक्ति के माध्यम से सुनकर तथा शब्द ज्ञान के माध्यम से पढ़कर उसके प्रति मिथ्या अथवा संशय को दूरकर उसके सम्यक ज्ञान की प्राप्ति की है। इस प्रकार मनुष्य सम्यक ज्ञान के आधार पर जो ज्ञान पाप्त करता रहा, वास्तव में वही यथार्थबोध कहलाया, क्योंकि वस्तुस्थिति का सम्यक या ज्यों का त्यों ज्ञान ही यथार्थबोध कहलाता है।

मनुष्य के शरीर की रचना विभिन्न तत्वों के मिश्रण से हुई। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य का मिलजुल कर रहना उसकी जन्मजात प्रकृति है। इसीलिए जब मनुष्य में मिलजुल कर रहने की प्रकृति जागृत हुई तो वह रूपों-स्वरूपों से गुजरती हुई समाज के रूप में फलीभूत हुई। निरंतर उन्नत्ति एवं विकास के पथ पर गमन करते हुए मनुष्य समाज में धर्म, संस्कृति एवं अर्थ इत्यादि के नैतिक-अनैतिक पाशों में उलझता चला गया। यथार्थबोध के सन्दर्भ में यदि समाज के विभिन्न सन्दर्भों का अध्ययन किया जाता जाए तो समाज के साथ-साथ इन सन्दर्भों में धर्म, संस्कृति, अर्थ, राजनीति, इतिहास, साहित्य एवं व्यक्तिगत विभिन्न सन्दर्भ हमारे सम्मुख आते हैं।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन समाज में व्यतीत होता है। वह अपनी प्रथम श्वांस से अन्तिम श्वांस तक समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में जीवनयापन करता है। इसलिए मानव जीवन यथार्थबोध के अनेक सन्दर्भों में समाज एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ है। मानव जीवन के यथार्थबोध के संबंध में समाज के एक सन्दर्भ के रूप में प्रदर्शित करने के लिए यह आवश्यक है कि समाज-दर्शन के तत्वों की गणना की जाए ताकि इसके सन्दर्भ में रूप में नैसर्गिकता विद्यमान हो। सन्दर्भ के रूप में समाज के जो तत्व ग्राह्य हैं उसमें मानव-प्रकृति, मानव परिवार, वात्सल्य, मानव-दुष्टता, मानव-साधुता, मानव-विरोध एवं रीति-रिवाज प्रमुख है। मानव विवेकशील प्राणी है। अपनी इसी प्रकृति के आधार पर वह समाज में साथ मिलजुल कर रहना पसंद करता है। उसकी यही प्रकृति उसे पाशुविक प्रकृति से भिन्न करती है। इस प्रकार यह कथन सत्य है कि मनुष्य

प्रकृतिगत समाज का अभिन्न अंग बना रहना उचित समझता है। यह उसकी प्रकृति के साथ-साथ उसकी आवश्यकता भी है और उसकी विवशता भी। किसी समाज की इकाई अथवा अंग होने के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन में मानव के अनेक भावात्मक सम्बन्ध भी होते हैं जो परिवार के सदस्य के रूप में पूर्ण होते हैं। इसीलिए वह किसी का पुत्र, किसी का पिता, किसी का पति, किसी का भाई और अन्य अनेक सम्बन्धों में आबद्ध होकर संतोष का अनुभव करता है। परिवार में रहने की प्रकृति उसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने पर प्रेरित करती है। विवाहोपरांत वह किसी का पिता बनता है और उसमें वात्सल्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। सन्तान-प्राप्ति के उपरान्त विभिन्न रीति-रिवाज सम्पन्न होते हैं जो समाज को सन्दर्भ रूप में प्रस्तुत करने में सहायक होते हैं।

प्रकृतिगत मानव में साधुता का गुण है किन्तु विभिन्न घटनाएं-दुर्घटनाएं, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उसमें विरोध की प्रकृति उत्पन्न करती हैं और जब इस विरोध में निरन्तरता बनी रहती है तो यही विरोध उसमें दुष्टता जैसे विनाशकारी अवगुण को उत्पन्न कर देता है। इस विरोध और दुष्टता के विद्यमान होते हुए भी मनुष्य समाज में अन्योन्याश्रित रहता है। मनुष्य जीवनयापन करते हुए अपने समस्त कार्य स्वयं करने में सक्षम नहीं वह क्षण प्रतिक्षण किसी अन्य पर आश्रित रहता है और कोई न कोई उस पर आश्रित रहता है। इसलिए समाज को गतिमान बनाए रखने में अन्योन्याश्रित रहने की प्रकृति समाज का जीवंत एवं बलवंत तत्व बन जाती है।

मनुष्य के जीवन अथवा उसके अस्तित्त्व के लिए समाज अति आवश्यक है, क्योंकि समाज के अभाव में मानव के स्वस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भावनात्मक एवं सम्बन्धों के धरातल पर मनुष्य का परिवार के सदस्य के रूप में जीवनयापन आवश्यक हो गया है। अकेला मनुष्य समाज में रहते हुए भी किसी न किसी परिवार का सदस्य अवश्य होता है। यदि वह परिवार के विकसित करने में अक्षम हो तो समाज का सदस्य होते हुए भी वह एक सफल जीवन व्यतीत करने में कठिनाई अवश्य अनुभव करता है। परिवार के अस्तित्व को बनाए रखने एवं उसकी गति के विकास के लिए विवाह अनिवार्य है। आधुनिक

समाज में नर-नारी का परस्पर प्रेम और विवाह सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है। यह समाज में नर-नारी के सम्बन्धों को वैधता प्रदान कर पवित्र बन्धनों में आबद्ध करता है। यही से समाज के वे अनेक तत्व जन्म लेते हैं।

मानव जीवन धार्मिक सन्दर्भों के अंतर्गत ईश-स्वरूप, ईश- अस्तित्त्व, ईश-भक्ति, ईश-स्तुति एवं ईश के प्रति विश्वास आदि की गणना की जा सकती है। इस सम्बन्ध में विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोण के आधार पर ईश-सम्बन्धी उपर्युक्त सन्दर्भ विचार के योग्य हैं। इनके अतिरिक्त धार्मिक दृष्टि से इस्लाम के अंतर्गत ऐकेश्वर के साथ-साथ रसूल के विषय में विचार व्यक्त करना भी इसी धार्मिक सन्दर्भ का एक अंग है। दूसरी ओर हिन्दू धर्म के अंतर्गत विभिन्न देवी-देवताओं और अवतारों के साथ-साथ महापुरुषो आदि की भी धार्मिक संदर्भो के अंतर्गत गणना की जा सकती है। धार्मिक दृष्टि से भावों अथवा वैचारिकता के साथ-साथ धर्म के ब्राह्य,मूर्त अथवा स्थूल उपकरणों का भी अपना विशेष महत्त्व है। जिस व्यक्ति की जिस धर्म विशेष में आस्था होती है वह उसी के अनुरूप इन स्थूल उपकरणों का निर्माण करता है और इनके प्रति अपना विश्वास व्यक्त करता है। भारत में मुख्यतः हिन्दू-मुस्लिम धर्मावलम्बी शाताब्दियों से साथ-साथ जीवन यापन कर रहे हैं। इनके अपने –अपने विश्वास और अपनी-अपनी आस्थाएँ हैं। इन्हीं के अनुरूप वे नमाज-पूजा रोजा-व्रत, विर्द-जप, मस्जिद-मन्दिर, जियारत-तीर्थ आदि में विश्वास एवं आस्था रखकर समाज में अपनी-अपनी धार्मिक पहचान बनाते हैं। इन्हीं समस्त धार्मिक विश्वासों एवं धर्मगत स्थूल उपकणों की धार्मिक संदर्भो के अंतर्गत गणना की जा सकती है। इनके अतिरिक्त नैतिक धरातल पर भी नैतिक का उल्लेख अनिवार्य है क्योंकि धर्म नीति के अभाव में वास्वतिक धर्म नहीं रह जाता। नैतिक धरातल पर मानव के परस्पर व्यवहार में यदि कटुता उददंडता एवं दुष्टता व्याप्त हो तो धार्मिक दृष्टि से यह अनैतिक कहलाएगी। इसके विपरीत मानवीय व्यवहार में सदाचारिता, परोपकारिता, सत्यभाषण, संवेदनशीलता, न्यायप्रियता, सरलता, मानवता, प्रेम, दया एवं संतोष नैतिकता का प्रदर्शन करते है जो धर्म के विभिन्न अंगो के रूप में स्वीकृत किए जाते हैं।

विश्व की अन्य प्राचीनतम संस्कृतियों के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की स्रोतस्विनी भी अपने पूर्ण वेग के साथ प्रवाहित है। द्रविड़ और आर्यों से चली आ रही भारतीय संस्कृति में ग्यारहवीं शताब्दी के आस-

पास मुस्लिम संस्कृति का समावेश हुआ। आरम्भिक अंतर्द्वंद्व के पश्चात्त दोनों मे समन्वय स्थापित हुआ। यही समन्वयात्मक अथवा गंगा-जमुना संस्कृति का जन्म हुआ। यही समन्वयात्मक अथवा गंगा-जमुना संस्कृति के नाम से जग में जानी-पहचानी जाती है।

मनुष्य समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है और समाज इसी मनुष्य के पारस्परिक संबंधों का जाल है। मनुष्य को नियंत्रित रखने के लिए विभिन्न मान्यताओं, परम्पराओं, सिद्धांतो, नीतियों एवं नियमों का आश्रय लेना पड़ता है उपर्युक्त व्यवहारपरक तत्त्व समाज में संस्कारों का रूप धारण कर लेते हैं। मनुष्य की जीवन से लेकर मृत्य तक की सम्पूर्ण यात्रा इन्हीं संस्कारों में आबद्ध रहती है। सांस्कृतिक दृष्टि मानव-जीवन के विभिन्न कदाचित ही कोई ऐसा अवसर हो जो संस्कार से वंचित हो इसीलिए मानव-जीवन के उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण संस्कारों की भारतीय संस्कृति की दृष्टि से चर्चा अनिवार्य है। भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण संदर्भो में नाम करण-संस्कार, विवाह- संस्कार, वर-प्रेक्षण, वाग्दान, लग्न-पत्रिका, अग्नि-प्रदक्षिणा, सगाई, हल्दी-लेपन, वर-सज्जा, यात्रा, ज्यौनार, दान-दहेज, समधी-मिलन, न्यौछावर, विदा, अंत्येष्टि, आमोद-प्रमोद, पर्वोत्सव, रक्षा-बंधन , दीवाली, होली, शबेबराअत, ईदलफ़ित्र, जुआ, कुश्ती, नृत्य, बाजीगरी, बरसात, बसंत, जाड़ा, गर्मी, अकीका (मुंडन) रोजा, नमाज, ईद, पूजा-अर्चना, मेले-ठेले इत्यादि की चर्चा की जाती है। तात्पर्य यह है कि जन्म से मृत्यु-पर्यन्त क्षण-प्रतिक्षण जिन विभिन्न संस्कारों में मानव आबद्ध होकर जीवन व्यतीत करता है, वही संस्कार हमारे सांस्कृतिक सन्दर्भ है।

निष्कर्ष यह है कि यथार्थबोध के अंतर्गत मानव-जीवन के विविध सन्दर्भों का सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक धरातल पर विवेचन किया जा सकता है। सामाजिक प्राणी होने के फलस्वरूप मनुष्य के समाज में जीवनयापन के लिए धार्मिक सिद्धांत, समाज में प्रचलित विभिन्न मान्य संस्कार एवं अर्थ आदि का विशेष महत्त्व है। इसी आधार पर उसके जीवन से समस्त यथार्थबोध को इन्हीं सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक सन्दर्भों की परिधि में रखकर देखा जाता है।

सन्दर्भ-

1 – डॉ शहाजहान मणरे, सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव, पृ.सं. -2

2- वही, पृ. सं.- 3

3 – वही, पृ. सं.-3

4 – वही, पृ. सं.- 3

5 – वही, पृ. सं.- 3-4

6 – वही, पृ. सं.- 4

7 – वही, पृ. सं.- 4

8 – डॉ. रामचंद्र मारुती लोंढे, संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. सं.- 15

9 – डॉ. शहाजहान मणरे, सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव, पृ. सं. -5

10 –डॉ. रामचंद्र मारुती लोंढे, संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व , पृ. सं. – 16

11- डॉ शहाजहान मणरे, सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव,परिशिष्ट -1 से उद्धृत

12 – नरेन- कथाकार संजीव : तनिक बोझवा उठाई द, कोलकाता, अगस्त 2004, पृ. सं. – 58

13 – संजीव , भूमिका तथा अन्य कहानियाँ, पृ. सं. – 122

14 – चर्चा, अंक- 9 पृ. सं. -4

15 – डॉ शहाजहान मणरे, सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव, परिशिष्ट, 2 से उद्धृत

16 – संजीव, किशनगढ़ के अहेरी, पृ. सं. -70

17 –संजीव, सर्कस , पृ. सं. -149

18- डॉ. अमिताभ वेदप्रकाश, हिंदी उपन्यास की दिशाएँ, पृ. सं. -152

19- संजीव, सावधान ! नीचे आग है, पृ. सं. – 43-44

20 – संजीव, धार , पृ. सं. -123

21- डॉ. सुरेश सिन्हा, हिंदी कहानी:उद्भव और विकास, पृ. सं.- 33

22- सं. केशव शिखर , चौथा अंक, अप्रैल, 1985, पृ. सं.- 65

23 – सं. ज्ञानरंजन – पहल, पहल, फरवरी, 2000, पृ. सं. -12

24 –संजीव, भूमिका और अन्य कहानियां, पृ. सं. -12

25- डॉ. त्रिभुवनसिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. सं. -43

26- भगवतीचरण वर्मा, साहित्य के सिद्धांत तथा रूप, पृ. सं.- 51

27- डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. सं. -44

28- डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही', आधुनिक हिंदी काव्य में यथार्थवाद, पृ. सं. - 66

29- धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), हिंदी साहित्यकोश, पृ. सं. -840

30- डॉ. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ , पृ. सं. - 99

31- डॉ. प्रकाशचन्द्र गुप्त, आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ. सं. -202

32- धीरेन्द्र वर्मा (सं) हिंदी साहित्य कोश, पृ. सं. – 568

33- डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. 186

34- नन्दकिशोर आचार्य, लेखक की साहित्यिकी, पृ. 101

35- नन्दकिशोर आचार्य, लेखक की साहित्यिकी, पृ. 101

36- डॉ. विजय नारायण सिंह, आदर्श हिन्दी निबन्ध, पृ. 97

37- डॉ. विजय नारायण सिंह, आदर्श हिन्दी निबन्ध, पृ. 96

तृतीय अध्याय

'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ-बोध

सामान्य रूप से दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह को 'समाज' कहते हैं। यह शब्द संस्कृत के दो शब्दों से मिलकर सम+अज से बना है। 'सम' का अर्थ इकट्ठा व एक साथ और 'अज' का अर्थ है साथ रहना। अथार्त 'समाज' शब्द का अर्थ हुआ एक साथ रहने वाला समूह। प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य ने प्राकृतिक संकटों से बचने के लिए समाज की उपयोगिता और आवश्यकता को समझकर परिवार बनाकर रहने लगा। धीरे-धीरे परिवार बढ़ता गया और एक समाज का निमार्ण हुआ। 'सामाजिक' शब्द 'समाज' में ईक प्रत्यय लगकर बना है। मानव हो या पशु हर किसी का अपना समाज होता है, जहाँ पर वे रहते हैं। समाज के निर्माण के पश्चात् वहाँ पर संस्कृति का जन्म होता है। उसमें समाज की आशा, आकांक्षा, आस्था-विश्वास, आमोद-प्रमोद, पर्व-उत्सव आदि का समावेश हो जाता है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था और परंपराओं का उल्लेख जायसी की रचनाओं में मिलता है। इस्लाम में ये मान्यता है कि- "मनुष्य को समाज में रहकर सामाजिक समस्याओं में उलझ कर मुक्ति पाना ही जीवन की सार्थकता है।"[1]

'समाज' का अर्थ एकाधिक है। किसी ने 'समाज' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के लिए किया है, किसी ने समूह के लिए, किसी ने समस्त राष्ट्र के लिए, किसी ने मानवजाति के लिए, किसी ने मानव सभ्यता के लिए किया है तो किसी ने पशु के समूह को भी समाज कहा है। व्यक्ति या पशु जब अपने समाज में रहने लगता है तो उनका सामाजिक यथार्थ आरंभ होता है। यहाँ सामाजिक संबंधों का तात्पर्य उन संबंधों से है जो अर्थपूर्ण ढंग से या किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए की जाती है। सामाजिक-यथार्थ में सामाजिक संबंधों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब कोई व्यक्ति अपनी जैविक अथवा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने लिए किसी दूसरे व्यक्ति के साथ क्रिया करता है, तब क्रिया के फलस्वरूप सम्पन्न होने वाले संबंध को सामाजिक संबंध कहते हैं।

'समाज' के अंतर्गत संबंधों में परिवर्तन होते रहते हैं। सामाजिक यथार्थ में परिवेश, शिक्षा, नैतिक मूल्य, नारी- पुरुष संबंध आदि महत्त्वपूर्ण तत्व है। परिवर्तित समय के साथ इन तत्वों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है । शहर हो या ग्रामीण क्षेत्र सबका अपना-अपना समाज, परंपरा, सांस्कृतिक जीवन, वातावरण, धर्म, रहन-सहन, राजनीतिक जीवन, आर्थिक जीवन, भाषा, लोकगीत आदि होती हैं। शहर की तुलना में ग्रामीण समाज में इनकी बहुलता रहती है और इन्हीं तत्व को लेकर अंचल का निर्माण होता है। सामाजिक मूल्यों के अनुसार मनुष्य का व्यवहार में परिवर्तन होता है और वह व्यवहार समय के साथ परिमार्जित भी होता है। साहित्य का संबंध समाज के साथ है, साहित्यकार जिस साहित्य की रचना करता है उसकी जड़े समाज से जुड़ी विषय वस्तु के साथ होता है। साहित्यकार किसी समाज में घटित घटनाओं को कलात्मक ढंग से साहित्य में हूबहू अभिव्यक्त करता है, वे सब सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत आता है।

लेखक जिस माहौल में पलता-बढ़ता है, स्वाभाविक रूप से वह उस महौल को लेकर ही साहित्य सृजन करता है। संजीव ऐसे साहित्यकार है जो बचपन से ही गाँवों से जुड़े हुए हैx। उन्होंनें कारखाने में काम करते हुए निम्नवर्ग की जिन्दगी जी है, भोगी है। पश्चिम बंगाल के मजदूरों का संघर्षमय जीवन तथा झारखंड के आदिवासियों की जिन्दगी को नजदीक से देखा है तथा उनके सुख–दुःख में साथ रहे हैं। संजीव के कथा –साहित्य में दलित, आदिवासी निम्नवर्गीय तथा उच्चवर्गीय समाज का सामाजिक यथार्थ चित्रित है। कथा साहित्य में चित्रित दलित, आदिवासी तथा निम्नवर्गीय समाज विभिन्न समस्याओं से, शोषण तथा संघर्ष से पीड़ित दिखाई देता है।

'फाँस' उपन्यास विदर्भ के किसानों के बहाने सम्पूर्ण भारत के किसानों की छटपटाहट एवं दर्दकथा है। बयालीस छोटे–छोटे अध्यायों में विभक्त यह उपन्यास अपनी संरचना में रेणु के 'मैला आँचल' की प्रकृति का है। ये अध्याय एक तरह से वनगांव, गढ़चिरौली,चन्दपुर, यवतमाल, धनोरा, मेडालेखा, अमला, इंजला, बासोड़ा, साईपुर और नागैरा आदि छोटे –छोटे मराठी गांवों में सी.सी.कैमरों की जीवंत रिपोर्ट जैसे हैं। संजीव का यह उपन्यास वर्तमान उत्तर–आधुनिक समाज की गहरी पकड़ रखता है। इस उपन्यास में

किसान किस तरह से 'फँस' गया है उसकी व्याख्या अनेक कोणों हुआ हैं। डॉ.मैनेजर पांडेय सामाजिक यथार्थ के बारे में लिखते है- "किसी रचनाकार की चिंता का मुख्य विषय जीवन का यथार्थ है और जीवन का यह यथार्थ बहुआयामी होता है। रचनाकार सामाजिक यथार्थ और सामजिक संबधों की समग्रता का चित्रण करते समय मानव संबंध के वैयक्तिक, सामाजिक और मानवीय पक्षों का उद्घाटन करता है। वह मनुष्य की वैयक्तिक, सामाजिक और मानवीय संवेदनशीलता की व्यंजना करता है।"[2] सामाजिक यथार्थ के बारे में हिंदी साहित्य कोश में लिखा गया है कि- "सामाजिक यथार्थ दार्शनिक दृष्टि से प्रत्यक्ष जगत से बिल्कुल भिन्न है। प्रत्येक मानव-मस्तिष्क से संबंधित है किन्तु सामाजिक यथार्थ के भीतर जो शक्तियां आती हैं, वह मानव-मस्तिष्क के बाहर है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का समुच्चय ही सामाजिक यथार्थ है।"[3]

सामाजिक यथार्थ को यथार्थ रूप में अंकन करते हुए अनूप शुक्ल सामाजिक यथार्थ के बारे में लिखते हैं - "सामाजिक यथार्थ से आशय वस्तुतः समाज के बहुसंख्यक वर्ग के यथार्थ से होता है, न कि उस वर्ग के यथार्थ से जो व्यवस्था के सुरक्षित परकोटे से निद्वंद्व है।"[4] सामाजिक यथार्थ से अभिप्राय समाज की यथास्थिति का चित्रण करना, दूसरे शब्दों में समाज जैसा हो वैसा ही उसका यथार्थ चित्रण किया जाये। अर्थात् सामाजिक विषमताओं, पिछड़े वर्ग पर होने वाले अन्याय-अत्याचार, शोषित लोगों की वेदना, भ्रष्टाचार, अन्धंविश्वास, धार्मिक आडंबर, गरीबी, बेकारी तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रान्त आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं से संत्रस्त समाज का यथार्थ चित्रण करना है। संक्षेप में समाज की विविध परिस्थितियों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ है।

यथार्थ के बारे स्वयं संजीव का मानना है कि "यथार्थ की तह तक पहुँचने के लिए मेहनत और लगन चाहिए। सिर्फ अनुभव, कल्पना और आग्रह के बूत सच्चाई कैसे ढूंढ पाएँगे, जब तक आप संवेदनतंत्र की जड़ों को नहीं टटोल लेते, निष्कर्ष हमेशा गलत होगा या अधूरा।"[5] इस कथन से यही विदित होता है कि यथार्थ के तह तक पहुँचने के लिए संवेदन तंत्र की जड़ों को टटोलना जरूरी है। संजीव इसीलिए संवेदन तंत्र

के माध्यम से कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ का गहराई से यथार्थ चित्रण करते हैं। विवेच्य कथा-साहित्य में दलित समाज और मजदूर समाज के सामाजिक यथार्थ में दलित को अस्पृश्य (अछूत) मानकर सवर्ण द्वारा अपमानित और पीड़ित करके उनके अधिकार हनन का यथार्थ चित्रण परिलक्षित होता है। सवर्ण लोगों की स्वार्थी मानसिकता पर प्रकाश डालते हुए दलित नारी पर बलात्कार करने से धर्म भ्रष्ट नहीं होता है लेकिन दलित का स्पर्श होने से धर्म भ्रष्ट होता है, इस पर करारी चोट लगाई है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि संजीव के विवेच्य कथा-साहित्य में दलित समाज, आदिवासी समाज ओर निम्न वर्ग के सामाजिक यथार्थ का विस्तृत चित्रण परिलक्षित होता है।

'फाँस' उपन्यास में दलित समाज, आदिवासी समाज ओर निम्न वर्ग के सामाजिक यथार्थ को संजीव ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किस तरह किसानों को सारी योजनाओं से वंचित किया जाता है, इसे बहुत ही अच्छे से इस उपन्यास में देखने को मिलता है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जो ऊपरी पायदान के लोग हैं, वे भी वनों पर अपने अधिकार से वंचित कर दिये गये लोगों के प्रति विभेद किये हुए है। उपन्यासकार वनगाँव के पुजारी के भ्रष्ट, कामुक और निठल्ले चरित्र का भी वर्णन करता है। दरअसल हिन्दू धर्म की आस्थाओं, मान्यताओं और सामाजिक रिवाजों को भी उपन्यासकार ने 'फाँस' ही माना है। शकुन्तला बेटियों के विवाह में होने वाली मुश्किल को बड़ी जात के हिन्दुओं की संक्रामक दहेज की बीमारी से जोड़कर देखती है। उनकी जाति के हिन्दुओं के लड़कों के लिए दहेज का रेट प्राय: एक हीरो होंडा और एक लाख रूपये है, पर आर्थिक रूप से संकटग्रस्त एक छोटे किसान परिवार के लिए इतने रूपये जुटाना भी मुश्किल है। शकुन्तला अपने पति से बहस करते हुए कहती है, 'अपने बगल के गाँव में नींलू और चंदा के बाप को किसने मारा, फसल की बर्बादी ने? नहीं...इन्हीं हिन्दुओं की इसी संक्रामक बीमारी ने।' अपनी बेटियों के लिए वर खोजते शिबू को लगता है कि 'काश'! यह जाति व्यवस्था न होती तो समाधान इतना मुश्किल न होता।

समाज में शकुन्तला का हिन्दू देवी-देवताओं से भरोसा उठने लगता है, वह बौद्ध धर्म की दीक्षा ले लेती है। हिन्दू देवी-देवताओं की तस्वीरें वह घर से बाहर फेंक देती है। उनकी जगह वह बुद्ध, अम्बेडकर, फुले, सावित्रीबाई फुले की तस्वीरें लग जाती है। अशोक जब देवी-देवताओं की तस्वीरें फेंकने पर सवाल करता है, तो शकुन्तला तल्खी से जबाब देती है, "तेरे ये देवता और तुम क्या कर रहे थे जब पुलिस हमसे जानवर से भी बदतर सलूक कर रही थी।"[6] शकुन्तला तो एक बार अपनी मराठा सखी शुभा के बेटे अशोक को चुनौती भी देती है कि वह कलावती से शादी कर ले, पर जाति की दीवार इतनी आसानी से टूटती है। हालाँकि शकुन्तला की दोनों बेटियों की शादी के बाद शुभा को अपने बेटे के इस इतिहासबोध से थोड़ी राहत मिलती है कि बुद्ध भी क्षत्रिय थे। जाहिर है कि इसके जरिये उपन्यासकार ने जातीय श्रेष्ठताबोध से ग्रस्त मानसिकता पर व्यंग्य ही किया है। यहाँ समाज में व्याप्त फाँस के माध्यम से सभी घटनाओं को दर्शाता है।

'फाँस' उपन्यास में संजीव एमिल दुर्खिम के पुस्तक के आधार पर कहते हैं - "आत्महत्या के प्रति प्रत्येक समाज का एक सामाजिक झुकाव होता है। यह झुकाव व्यक्ति से परे और उसकी इच्छाओं से ज्यादा बलवान होता है। आत्महत्या के मूल तत्त्व कहीं न कहीं सामाजिक संरचना में मौजूद रहते हैं, खासकर उन समाजों में, जहाँ व्यक्ति समाज के अधीन होता है, वहाँ यह माना जाता है कि आत्महत्या उनके अनुशासन की अपरिहार्य क्रियाविधि है, खासकर सामूहिक आत्महत्या के मामलों में उसके बीजों को देखा जा सकता है।"[7] आगे एमिल दुर्खिम जी कहते हैं- "कृषक समाजों का अपना अनुशासन होता है। जिन पर उनके समुदाय के दबाव होते हैं। वे अपने जीवन का मूल्य ही कम आँकते हैं। जैसे ही किसान अपना मूल्य कम आँकने लगते हैं, उसके लिए कोई भी चीज इस जीवन को त्यागने का बहाना बन जाती है।"[8] "कुछ समाजशास्त्रियों का मानना है कि अत्यधिक वैयक्तिकरण आत्महत्या की ओर ले जाता है। आत्महत्या इसलिए की जाती है कि समाज व्यक्तियों को अपने से पलायन करने देता है क्योंकि कुछ मामलों में वह अधिक सम्पूर्ण होता है, समाज व्यक्ति को अत्यधिक संरक्षण में जकड़े रहता है।"[9]

इस उपन्यास में संजीव ने स्त्री जीवन, शिक्षा एवं रोजगार की समस्या, जाति-व्यवस्था, धार्मिक संघर्ष एवं जनमानस पर उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव आदि का यथार्थ चित्रण किया है, जिसका वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है।

3.1. स्त्री जीवन:

स्त्री मनुष्य-जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। उसके बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण ही है। सदियों से नारी साहित्य के केन्द्र की धुरी रही है। मनुष्य जीवन को चित्रित करने वाला साहित्य भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता अत: साहित्य और स्त्री का सम्बन्ध शाश्वत है तथा उपन्यास मानव जीवन को समग्र रूप से चित्रित करने वाली सशक्त साहित्यिक विधा है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास एक सर्वाधिक लोक प्रिय विधा होने के नाते उसमें भी स्त्री जीवन का चित्रण स्वाभाविक बात है। उपन्यास विधा के आरंभ से लेकर आज तक स्त्री-जीवन का चित्रण उसमें मिलता है। नारी का जीवन समाज में हमेशा से ही संघर्षशील रहा है। वह अनेकों बार उत्थान, पतन, शोषण भोग्या आदि के दौरे से गुजरती हुई आज पुरुष जाति से कंधे से कंधा मिलाती हुई अपनी पहचान इस समाज में दिलाती, खुद के बलबूते पर खड़ी हो पाई है।

नारी समाज की आधारशिला है। नारी का समाज में स्थान बताते हुए डॉ.शशिभूषण सिंहल मानते हैं कि "नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है, किसी भी समाज की श्रेष्ठता का निर्णय मुख्यतः समाज में नारी की स्थिति पर निर्भर रहता है। नारी समाज में उन्नति, अवनति का घोतक बन जाती है।"[10] इस कथन से मालूम होता है कि नारी की स्थिति पर समाज की श्रेष्ठता निर्भर रहती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में संविधान ने नारी को समानाधिकार उपलब्ध करा दिया इसका लाभ शहरी नारियों को मिला। लेकिन ग्रामीण नारियाँ इससे उपेक्षित रही, ग्रामों में रहने वाली दलित नारी की स्थिति क्या हो सकती है? दलित नारी को जमींदार, सेठ, प्रधान, सरपंच, मुशी, ठाकुर तथा पंडित भोग्य समझकर, डरा धमकाकर उन पर अत्याचार करते हैं, इज्जत लुटते हैं तथा पिटाई करते हैं। दलित स्त्री को अपने हाथों की कठपुतली मानते हैं। दिन-दहाड़े चलने वाले

इन अत्याचारों के खिलाफ कोई चूं तक नहीं करता। संजीव ने प्रस्थापितों द्वारा किए जाने वाले अन्याय का प्रतिरोध करने वाली सशक्त दलित नारी का चित्रण किया है।

प्राचीन काल से सामंत और पूँजीपति वर्ग द्वारा किसानों, दलितों, मजदूरों का सामाजिक एवं आर्थिक शोषण हो रहा है। सामाजिक व्यवस्था में उनका जीवन जानवरों से भी बदतर बना हुआ है। दलितों की मजबूरी का फायदा उठाकर उनका शोषण करना अपना कर्तव्य मानते हैं। अगर वह दलित नारी होगी तो उसकी हालत का बयान करना मुश्किल है। डॉ. अर्जुन चव्हाण नारी शोषण के बारे में ठीक ही कहते हैं- "यौन शोषण तो नारी जीवन का अभिशाप है जिसे वह सदियों से ढोती रही है। ऊपर से अगर वह नारी हो तो क्या कहे? उसके लिए यह दोहरा अभिशाप है। वह शोषण ही शोषण को बर्दाश्त करती आई है, औरत होने के कारण मर्द से और दलित होने के दर्द से।"[11] इससे यही पता चलता है कि नारी को मनुष्य दासी मानता हुआ आया है। जब तक मनुष्य में नारी को एवं उनके नातित्व को समझने की भावना का अभाव रहेगा तब तक नारी का शोषण होता ही रहेगा। नारी को अपने शोषण के खिलाफ प्रतिरोध करना होगा।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से पुरुष प्रधान संस्कृति रही है। पुरुष की तुलना में आज भी नारी को दुय्यम स्थान दिया जाता है। प्राचीन काल में तो नारी को चार दीवारों के अंदर ही रहना पड़ता था। आज शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होने के कारण नारी पढ़ लिखकर अपने अधिकारों के लिए जाग्रत हो रही है। पुरुष के कंधे को कंधा लगाकर हर क्षेत्र में अपनी क्षमता सिद्ध कर रही हैं। लेकिन यह प्रमाण अल्प है। प्राचीन काल की तरह आज भी नारी के प्रति एक भोग्य की वस्तु की रूप में देखा जाता है। गुलाम की तरह उसके साथ बर्ताव किया जाता है। संजीव के 'फाँस' उपन्यास में पारिवारिक, मानसिक-शारीरिक एवं लैंगिक शोषण का चित्रण परिलक्षित होता है। भारतीय परिवार का मुख्य घटक स्त्री है। स्त्री के अलावा हम मनुष्य जाति की कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन परिवार में सबसे शोषित घटक स्त्री ही है। घर में यदि अहितकारक घटना घटित होती है, तो स्त्री को ही जिम्मेवार ठहराया जाता है। बच्चे बिगड़ जाये तो या बच्चे फेल हो जाये तो भी स्त्री को ही दोष दिया जाता है। डॉ. कुलकर्णी के विचार हैं कि - " नारी की

गुलामी का एक मात्र कारण हैं, उसकी आर्थिक परतंत्रता।"[12] इससे यही मालूम होता है कि स्त्री को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। जिसके कारण उसे हर एक की लाचारी करनी पड़ती है। संजीव के कथा-साहित्य में स्त्री शोषण काफी मात्रा में परिलक्षित होता है।

संजीव का 'फाँस' उपन्यास किसानों को समर्पित है। सबका पेट भरने और तन ढकने वाले देश के लाखों किसानों और उनके परिवारों के आत्महत्या को हम रोक नहीं पा रहे हैं। दरअसल 'फाँस' उपन्यास लेखक संजीव द्वारा किसान आत्महत्या पर केन्द्रित अनेक वर्षो के शोध परिणाम है। यह उपन्यास की शुरुआत महाराष्ट्र विदर्भ राज्य के यवतमाल जिले के एक सुखाड़ गाँव 'वनगांव' से होता है। इस उपन्यास में स्त्री-पात्रों में 'शकुन्तला', 'सरस्वती'(बड़ी), 'कलावती' (छोटी), 'शोभा', 'आशा' प्रमुख रूप से उभरकर आती है। जीवन व्यवहार के प्रति पात्रों का रूप उत्तर–आधुनिक है, कुछ पात्र नयी जीवन पद्धति की रचना करते हैं। शिबू की दो जवान बेटियां बड़ी सरस्वती, छोटी कलावती, पत्नी, शकुन के साथ तमाम प्रकार की परेशानियों मुश्किलों की बीच संघर्ष करते हुए अपना-जीवन जी रहा है। संजीव ने 'फाँस' उपन्यास में स्त्री जीवन को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'स्त्री जीवन' के विभिन्न पहलुओं को करीब से देखने और उसकी बिडम्बनाओं के रेखाकिंत करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है।

'फाँस' उपन्यास में गरीबी, तंगहाली और प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करने वाली संघर्षशील स्त्री–चरित्रों को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में प्रमुख स्त्री पात्र है- शकुन, आशा, शोभा, कलावती (छोटी), सरस्वती (बड़ी), सिन्धु ताई, मंजुला, बन्दना, रोहिणी, और निवेदिता आदि। स्त्री के विभिन्न चरित्रों के माध्यम से लेखक ने नारी–विमर्श का सही मायने में विस्तार और विकास किया है। इसका उदाहरण देते हुए संजीव कहते हैं कि "अरे sss महिलाएं क्या नही कर सकती।"[13] भारतीय महिला किसान तो खेती के साथ– साथ बाकी जिम्मेदारियां भी संभालती है। वे परिवार, रसोई, बच्चों की और मर्द की सारी जिम्मेदारियों का पालन करती है। आज रसोई में क्या बनेगा से लेकर किस खेत में कौनसा बीज पड़ेगा, सब्जी में कौनसा मसाला पड़ेगा, से लेकर किस फसल में कौन-सी खाद पड़ेगी, बच्चे पैदा करने से लेकर

संतानों तक के लिए सारे खर्चे जुटाने तक का काम करती है। ग्रामीण खेतिहर महिलाओं का जीवन श्रम और संघर्ष में ही गुजर जाती है। इस दर्द भरी दास्ताँ को हिन्दी–मराठी फिल्मों में भी चित्रित किया गया है। जैसे सन् 1924 में बनी फिल्म साहूकार पाश, बहुचर्चित फिल्म मदर इंडिया, बारोमास, गोदान तथा प्रसिद्ध पत्रकार पी. साईनाथ की डॉक्यूमेंट्री नीरोज गेस्ट में प्रभावी रूप में देखा जा सकता है। सबसे ज्यादा प्रभावकारी उसका मार्मिक अंश यह है कि आत्महत्या करने वाली माँ की बेटी कहती है,- "सोते जागते जब भी देखा, माँ को काम करते देखा।"[14]

'फाँस' उपन्यास की केन्द्रीय स्त्री–चरित्र शकुन हमारे सामने नायिका के रूप में आती है। वह शिवशंकर अर्थात शिबू की पत्नी है जिसका सही नाम शकुन्तला है। जिसे सभी लाड़ प्यार से शकुन कहकर पुकारते हैं। महाराष्ट्र के किसान आत्महत्या ग्रस्त पिछड़े विभाग विदर्भ के वनगाँव की वह महिला है। उसके चरित्र में हमें जुझारूपन, व्यावहारिकता, श्रमशीलता, आदर्श पत्नी, आदर्श माता और सबसे महत्वपूर्ण समाज सेविका के रूप में व्यकित्त्व के कई आयाम नजर आते हैं। किसान परिवार में बैलों का स्थान भाई के समान माना जाता है। क्योंकि वह कृषि परिवार और संस्कृति का आधार स्तंभ माना जाता है। यदि वही बैल स्वास्थ और वृद्धावस्था के चलते बीमार होने लगता है तब किसान पूरा चिंताग्रस्त हो जाता है। उपन्यास में वर्णित लालू नाम में बैल के सन्दर्भ में शकुन कहती है- "उठ! उठ जा रे मेरे बाबा! हट हट ! ट ट ! तमाम ललकारें बेकार गयी। नववारी में लपपथ शकुन दौड़ी –दौड़ी आयी। बस्ता मेड पर रखकर दौड़ी आयी "बैल नहीं 'भाई' है मेरा भाई।"[15]

'फाँस' उपन्यास की महत्त्वपूर्ण खासियत यह है कि इसमें अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन के संकटों से मुक्ति की जद्दोजहद में स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक धार्मिक-संस्कारों की बेड़ियों को तोड़ते हुए अपनी नयी सामाजिक पहचान हासिल करती हैं। चाहे वह शकुन्तला हो या वर्धा की सिन्धु ताई, जो बचपन से ही अपमान और प्रताड़ना की शिकार रही। शादी के बाद गर्भवती हुई तो साहूकार ने अफवाह फैला दी कि उसके पेट में उसका बच्चा है, नतीजन पति ने उसके पेट पर लात जमा दी। उसने खटाल में एक

बच्ची को जन्म दिया। गंदी ईंट से खुद गर्भनाल काटा। जब ससुराल और मायके कहीं भी आश्रय नहीं मिला तो ट्रेन पकड़कर अनजाने सफर पर चल दी। गीत-गाकर भीख माँगने लगी। वहाँ सुरक्षा महसूस नहीं हुई तो श्मशान में रहने लगी। बाद में बेटी को लेकर पुणे आ गयी और दगडू सेठ हलवाई के अनाथालय के सुपुर्द किया और अपना जीवन उपेक्षित माताओं और बच्चों को बचाने और सम्मान दिलाने के लिए समर्पित कर दिया। 'कलावती' इस सिन्धु ताई की जिन्दगी से बहुत ही प्रभावित है। 'फाँस' उपन्यास में स्त्री की इस तरह की दुर्दशा वर्णन हुआ है। हालाँकि 'कलावती' की जो जिन्दगी है, उस पर हाल के वर्षों में उभरे महिला आजादी के आन्दोलनों और विमर्शों का ज्यादा असर आता है। इसकी शुरुआत 'कलावती' द्वारा उस जींस को पहनकर गाँव में मटकते हुए घुमने से ही हो जाती है, जो आशा वानखड़े ने उसे दी थी। अपने सहपाठी अशोक से वह प्रेम करती है। उससे दुनिया जहान की बातें करती है। वह अपने पिता शिबू से बहस करती है,-"मुलगियों के सिर पर ही इज्जत का सारा बोझ क्यों ?"[16] वह आत्महत्या करने वाले एक कृषक दम्पती के बच्चे को घर ले आती है, उसे जीवन नाम देती है। लेकिन जीवन को अशोक-कलावती से जोड़ते हुए पूरा ग्रामीण समाज अफवाहों और चरित्रहनन पर उतर जाता है। शिबू महसूस करता है कि- "इन अफवाह फैलाने वालों में वे भी शामिल है, जो बौद्ध हैं। भगवान बुद्ध भी नहीं धो सके उनकी बर्बरता।"[17] खेती की तबाही, बेटियों के विवाह की चिंता और कलावती के बारे में अफवाहों से त्रस्त होकर शिबू आत्महत्या कर लेता है। घूस न देने के कारण उसकी लाश को आत्महत्या का 'पात्र' भी नहीं माना जाता। किसान की बहिन बेटियों के साथ यही होता है अक्सर वो दबे रहते हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' क्रान्ति त्रिवेदी के 'भूमिजा' तथा संजीव के 'फाँस' उपन्यास की नायिकाएँ और किसान की बहू–बेटियां उनके कंधों से कंधा मिलाकर खेत में खटती है परन्तु उन्हें हमारा भारतीय समाज किसान मानने को ही तैयार नहीं है। किसान स्त्री की इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है ?

'फाँस' उपन्यास की महत्वपूर्ण किसान स्त्री 'आशा' का जीवन और चरित्र भारतीय किसान स्त्री का प्रतिनिधि चरित्र है। घर-परिवार की जिम्मेदारी से अपनी बेटियों 'अजन्ता' तथा 'एलोरा' का लालन–पालन करते हुए अपने पति सुरेश का मरते दम तक साथ निभाती है। वह कर्ज, ब्याज और तंगहाली में गुजार–बसर

करते हुए एक दिन इस जीवन संग्राम में पराजित हो जाती है। खून–पसीना एक करके खेत में उगाया हुआ सफेद सोना (कापूस) बारिश के कारण भीग जाता है और वह हताश होकर जीवन–यात्रा समाप्त कर लेती है। 'आशा' के आत्महत्या करने के पश्चात् सरकारी पुलिस अफसर उसके पति से पूछता है- "तुम्हारे या तुम्हारी बायको किसी गैर से सम्बन्ध थे?" तब सुरेश मर्द की तरह तनकर खड़ा हुआ और बोला, "देखो साहब, तुम उसकी मौत को पात्र घोषित करो या अपात्र तुम्हारी मर्जी, मगर तुम्हें कोई हक नहीं की मेरी बायको को लांछित करो। वो मुझसे ज्यादा सच्ची किसान थी। निखट्टा मैं था, शराबी मैं था -----वो देवी थी। आंसू करुणा आक्रोश में खोलते शब्द थे, छौंक देते शब्द।"[18] पर दुर्भाग्य यह है कि मरने के बाद 'आशा' को ढकने के लिए दो गज कफन तक नशीब नहीं हुआ और बारिश में भीगे हुए कपास को ही कफन समझकर अतिंम क्रिया कर्म किया गया। यह प्रसंग हमें प्रेमचन्द के 'कफन' कहानी का अगला चरण दिखाई देता है।

इस उपन्यास में शकुन और छोटी की सकारात्मक जिजीविषा तमाम प्रतिकूलताओं के विरुद्ध उम्मीद और बदलाव का संघर्ष जारी रखती है। छोटी के चरित्र के बहाने संजीव ने देह से जुड़ी पारम्परिक आचार संहिताओं को नकारते हुए स्त्री-पुरुष संबंधों के संदर्भ में जो नैतिकता प्रस्तावित की है वह देह के लिए प्रेम को सामाजिक स्वीकृति न मिल पाना और दो तरह की आधुनिकताओं के द्वंद्व के बीच में झांकती सामाजिक जटिलताओं की व्यावहारिक तस्वीर दिखा जाता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संजीव स्त्रियों के प्रति संवेदनशील हैं, उनके हृदय में स्त्रियों के प्रति सम्मान की भावना है। वर्तमान समय में उन पर होनेवाले अत्यचार और शोषण से वे परिचित हैं। अत्याचार और शोषण की चक्की में पिसती स्त्रियों की विमुक्ति के लिए संजीव में बेचैनी और छटपटाहट है। पारिवारिक शोषण से स्त्रियों को कमजोर बनाया जाता है। किसी भी व्यक्ति को दोषी ठहराने के पहले कम से कम उसका दोष क्या है यह तो जान लेना चाहिए लेकिन समाज में ऐसा नहीं होता है। बिना पूछे, जाने बगैर हर बात दोष स्त्री को ही दिया जाता है। 'फाँस' उपन्यास में कलावती हो, या आशा हो, या शकुन हो, या छोटी हो उन्हें कठपुतली की तरह हर एक का शोषण बर्दाश्त करना पड़ता है, और तंग आकर उसे अंत में

आत्महत्या करनी पड़ती है। भारतीय समाज ने और पारिवारिक घटकों ने स्त्री का शारीरिक, मानसिक, लैंगिक शोषण करते हुए उसे दबोच रखा है, जो संजीव के फाँस उपन्यास में विस्तृत रूप से चित्रित हुआ है।

3.2. शिक्षा एवं रोजगार की समस्या-

शिक्षा मनुष्य को प्रकाश देता है। बिना शिक्षा के मनुष्य का जीवन एक पशु के समान होता है। शिक्षा अंतनिर्हित क्षमता तथा उसके व्यकित्त्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया है। आज देश में रोजगार सबसे बड़ी चुनौती है। सभी अभिभावकों की यही इच्छा रहती है कि उनके बच्चे पढ़-लिखकर अच्छी नौकरियाँ पायें। पढ़ लिखकर बेरोजगार न रहें। लेकिन कृषक अंधिकाश अशिक्षित और अर्धशिक्षित होते हैं। अशिक्षा के कारण किसान गाँवों के साहूकार, सेठ, मुखिया आदि से ऊंचे ब्याज की दर पे रुपया कर्ज लेते हैं। जैसे–शादी विवाह, मुंडन, संस्कार, मृतक संस्कार इत्यादि में अधिक धन व्यय करते हैं। धन कर्ज के रूप में काफी ऊंची ब्याज पर होता है, सेठ साहूकार किसानों से चक्रवृदि ब्याज वसूलते हैं, काफी समय व्यतीत होने पर किसान को कर्ज अपनी अचल सम्पति खेती, जमीन, घर आदि को बेचकर चुकाना पड़ता है। ऐसी दशा में घर छोड़कर मजबूर होकर किसान को जाना पड़ता है, जिसमें उनको मजदूरी, गुलामी और कभी–कभी भिक्षा वृत्ति का सहारा लेना पड़ता है। इसी कारण किसान के बच्चों को शिक्षा एवं रोजगार से वंचित होना पड़ता है।

मानव जीवन में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन को सुसंस्कृत करने और उसे विकास के पद पर ले जाने में शिक्षा सहायता करती है। भारत सरकार शिक्षा प्रसार एवं प्रचार के लिए कार्यरत है। आधुनिक काल में शिक्षा का महत्त्व बढ़ गया है क्योंकि आज पढ़ने लिखने वालों को साक्षर नहीं माना जाता। बल्कि जिसे कम्प्यूटर चलाना आता है उसे साक्षर कहा जाता है। आज भी हमारे देश में मजदूरों और किसानों को अर्थाभाव के कारण शिक्षा से वंचित रहना पड़ रहा है। दलितों और किसानों को प्राचीन काल में स्कूल के बाहर बैठना पड़ता था तो आज पिछले बेंचों पर बिठाने की प्रवृति कार्यरत है। संजीव के कथा-साहित्य में यह समस्या परिलक्षित होती है।

'फाँस' उपन्यास का मुख्य कथा बनगांव के शिबू उर्फ़ शिवशंकर और शकुन उर्फ़ शकुन्तला के परिवार की दर्दभरी कहानी से प्रारम्भ होता है। शिबू की छोटी बेटी कलावती बड़ी होनहार बलिका है। उसकी शिक्षा से ग्रामीणों का अंधविश्वास क्रमशः टूटता जाता है। मन्दिर का पुजारी सदाशिव भागवत ने शिबू की बेटी कलावती की शिक्षा बाधित करने की पूरी कोशिश की। जब इसमें वह सफल नहीं हुआ तो कलावती के बारे में दुष्प्रचार फैलाना शुरू किया कि अशोक से उसके गलत सम्बन्ध हैं। शिबू सदाशिव के प्रति कैसा भाव रखता है, देखिये- "मन्दिर का पुजारी। पूजा का प्रसाद भकोसकर अपने गोरे पुट्ठों का प्रदर्शन करता जाने किस-किससे टोह लेता रहता, कहां गयी? स्साला कुत्ता ! दिन भर नीचे नाले में नहाती औरतों को ताकता खजहे कुत्ते की तरह।"[19] इससे यही पता चलता कि समाज में शिक्षा बाधित करने के लिए समाज में किस तरह के लोग रहते है। अतः यहाँ संजीव मंदिर के पुजारी के माध्यम से किसान-गाँव में शिक्षा-दीक्षा के स्तर का यथार्थ चित्रण किये हैं। कोई भी अगर शिक्षा हासिल करने की प्रयास भी करता है तो इस प्रकार के पुजारी जैसे चरित्र की तरह न जाने और कितने लोग हैं जो हमेशा व्यंग मारते हुए नजर आते हैं। गाँव में आज भी ऐसे चरित्र के अनेक लोग हैं जिनके चलते वहाँ की लडकियाँ पढ़ाई नहीं कर पाती और गँवार बनकर रह जाती है। समाज में पुजारी जैसे चरित्र के लोग जब तक रहेंगे तब तक वह समाज आगे नहीं बढ़ सकता।

शिक्षा और रोजगार की समस्या इस सुखाड़ इलाके में सदियों से बनी हुई है। सुनील जानबूझ कर अपनी बेटी विधा का ब्याह किसान से नहीं, चंद्रपुर के मजदूर परिवार में किया। वह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर कामयाब बनाना चाहता था, उसकी इच्छा थी उसके बच्चे पढ़-लिखकर किसी बड़ी संस्था या कार्यालय में नौकरी करेंगे। इसी उम्मीद से पांच एकड़ खेत दोंनो बेटों की पढ़ाई और बेटी की शादी में लगा दिया। उसका बड़ा लड़का एम.ए., पी.एच.डी., कर के घर पर बैठ गया। छोटा लड़का मुम्बई जाकर फिल्म में अपनी किस्मत अजमाना चाह रहा था। दोनों को दो–दो लाख चाहिए थे किसान किसी तरह अपने बच्चों को मजदूरी मेहनत करके पढ़ता है। तो वो नौकरी नहीं दिला पाता क्योंकि एक दो लाख घूस देने के लिए उनके पास पैसे नहीं होते, अगर किसी तरह पैसे इक्कठा भी कर लेते है तो उनको रोजगार की समस्या आये

दिन देखना पड़ता है। यह तो किसान का बच्चा किसान बन गये या फाँस का फंदा गले में डालकर लटक जाये या जहर खाकर आत्महत्या कर ले। इसी कारण किसान अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पाता, लेखक कहता है- "सर इसका नाम मोहन है, मोहनदास इगतदास बाघमारे। शेतकारी आन्दोलन में घायल होकर रह गया। पांच एकड़ खेत थे। बेटे-बेटियों की पढ़ाई-लिखाई, बेटी की शादी में बिक गये। अब डेढ़ एकड़ बचे है। असिंचित। किसी की नौकरी नहीं हुई। दो बैल थे-एक सर्प दंश से मर गया, एक है भी ---। न उसके पास खाने के लिए कुछ है, न इसके।"[20]

किसान के घर में ज्यादातर त्यौहार के आ जाने पर भी ढंग से खाना खाने को नसीब नहीं होता। शुभा ने तरस खाती जुबान से कहा– "आज नववर्ष है। आज तो कुछ कायदे की चीज बना लेती ! चलो मैं देती पूरण पोली।लेकिन वो झटपटी रहती है –"नहीं वहिण कोई तो दिन आएगा, हम भी पूरण और ढेर सारा पकवान बनाएँगे। आज रहने दो।" "मगर क्यों" "वो सुनील काका ने कहा है न की जब तक कर्ज न उतार लो।"[21] किसान गरीब होने के चलते उनके पास कभी कभी भर पेट खाने का सामान भी नहीं रहता है। दरिद्रता के चलते तीज-त्यौहार में भी किसान परिवार खुशियाँ नहीं मना पाते हैं। किसान परिवार में यह सब दिक्कते शिक्षा और रोजगार की कमियों के कारण होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संजीव ने इस उपन्यास में शिबू की छोटी बेटी कलावती और सुनील के दोनों बेटों के माध्यम से गाँवों में शिक्षा और रोजगार की समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। आज भी गाँव में किसान परिवार में नजाने कितनी कलावती की तरह होनहार बेटियाँ है पर वे अपने वास्तविक परिवेश के चलते अपनी शिक्षा को आगे तक नहीं लेजा पाते। वैसे ही सुनील के दोनों बेटे भले ही अच्छी डिग्रियाँ प्राप्त कर लिए हो पर आज कुछ घुसखोर अधिकारी और नेताओं के चलते उन्हें रोजगार की समस्या झेलनी पड़ती है।

3.3. जाति–व्यवस्था-

'जाति' व्यवस्था हजारों वर्षों से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का एक हिस्सा है। परन्तु इक्कीसवीं सदी में रहने वाले किसी भी भारत वासी की तरह हम यह भी जानते हैं कि 'जाति' केवल हमारे अतीत का नहीं बल्कि हमारे आज भी एक अभिन्न अंग है। 'जाति' अंग्रेजी शब्द 'कास्ट' का हिंदी रूपान्तर है। जिसे पुर्तगाली भाषा में 'casta' से व्युत्पन्न माना जाता है। जहाँ इसे विभेद या मत के रूप में प्रयोग किया जाता है। संस्कृत की 'जन' धातु से 'जाति' शब्द व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ जन्म या उत्पादित है। अर्थात् जन्म के अनुसार अस्तित्व का रूप ही 'जाति' है, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्ण के स्तर की अनेक जातियाँ प्राथमिक रूप में हिन्दुओं में मानी जाती है। राम मनोहर लोहिया की दृष्टि में जाति व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक था। उनका मानना था कि - "समाज में जाति की गहरी पैठ ने ही लोगों में कर्म के प्रति अनास्था पैदा की है। और लोग भाग्यवाद का शिकार होकर कुछ नया नहीं करना चाहते हैं, इससे देश जकड़ कर रह गया है। उच्च जाति के लोग नीची जाति के लोगों को हेय दृष्टि से देखते है।"[22] लोहिया की दृष्टि में जाति का आधार जन्म था। जैसे- "प्राचीन समय के लोग मानते थे कि जाति का आधार कर्म है न कि जन्म। परन्तु वर्तमान में यह लागू नहीं होता है चूँकि यदि कर्म में परिवर्तन के साथ जाति में परिवर्तन हो जाता है, तब जाति का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।"[23] लोहिया के अनुसार जाति का संबंध गुण या कर्म से नहीं है। जब कोई वर्ग कठोर बन जाता है तब वह जाति का रूप ले लेता है। जब वर्ग स्थिर तथा जड़ हो जाता तो उसे जाति की संज्ञा दी जाती है। जिस समुदाय में जो कार्य पहले किया जाता था उसकी चेतना एक दिन में परिवर्तित नहीं होती है, यद्यपि व्यवसाय एक ही दिन में परिवर्तित हो सकता है। इसलिए ऐतिहासिक व्यवसाय किसी व्यक्ति की जाति है।

दुनिया की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि स्त्री का कोई धर्म नहीं होता, उसकी कोई जाति नहीं होती, होती है तो केवल कर्तव्य की भावना, वह किसी की बेटी, किसी की बहन, किसी की पत्नी, किसी की बहू, किसी की माँ तो किसी की दादी या नानी होती है। वह कभी हारती नहीं परन्तु उसे केवल प्यार से जीता जा सकता है। 'फाँस' उपन्यास की एक अन्य महत्वपूर्ण पात्र है, 'शुभा' वह क्षत्रिय मराठा परिवार की स्त्री है। वह भी किसान की सदस्या है। उसकी एक अभिन्य सहेली शूद्र और दलित परिवार की शकुन है। शुभा का

लड़का अशोक शकुन की लड़की कलावती से बहुत प्यार करता है। लेकिन उनके बीच जाति और धर्म की दीवार खड़ी होती है। इसलिए चाहते हुए भी शुभा मजबूर और लाचार बनती है अर्थात् वह धर्म और जाति की परिभाषा में उलझकर रही जाती है। शकुन बार-बार उसे हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने का अनुरोध करती है। उसका बेटा अशोक भी माँ को धर्म की परिभाषा समझाने की कोशिश करता है। लेकिन वह अज्ञान और अशिक्षा के कारण उलझकर रह जाती है। तब उसका बेटा उसे समझता है,- "अशोक ने अपनी आई को इतिहास का आईना दिखाया कि सम्राट अशोक, जिसके नाम पर उन्होंने उसका नाम प्यार से अशोक रखा है, स्वयं बौद्ध थे। यह भी कि बौद्ध धर्म एक क्षत्रिय, माने गौतम बुद्ध का चलाया हुआ था, और वे यानी शुभा का परिवार मराठा माने क्षत्रिय! सो शकुन का बैद्ध बन जाना कहीं से भी बेजा नहीं हुआ, बल्कि उनके और करीब आना हुआ।"[24] शुभा की तरह ऐसे कई चरित्र भारतीय समाज व्यवस्था में अपनी भावनाओं की बली चढ़ाते हुए दिखाई देते हैं।

'फाँस' उपन्यास में कलावती का परिवार दलित है और अशोक का परिवार मराठा अर्थात् उच्चवर्णीय परिवार है। इन दो परिवारों के रिश्तों के कई रंग है। पहला तो यह कि ये दोनों परिवार भावनिक दृष्टि से जुड़े हुए हैं। कलावती की माँ शुकन्तला और अशोक की माँ शुभा अच्छी सखियाँ है। यहाँ तक वे एक–दुसरे के सुख-दुःख में एक–दुसरे की सहायता करती है। महाराष्ट में गुडी पडवा के दिन कुछ मीठा भोजन बनाने की परम्परा है। आर्थिक परेशानी से शुकन्तला के घर कुछ मीठा नहीं बन पाता तो शुभा मानो कर्तव्य और हक़ समझकर कम–से–कम बेटियों के लिए तो पूरण पोली बना देती है। वही शुभा अपने बेटे अशोक और कलावती की नजदीकी सहन नहीं कर पाती। इसके पीछे शुभा के जातिगत विचार ही काम करते हैं। शकुन भी अपनी बेटियों को यही समझाने की कोशिश करती है कि ऊँची जातियों और दलितों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होते। इस समस्या के सामने झुककर बगावती छोटी अपना विवाह होने तो देती है, लेकिन वहां रह नहीं सकती है। पति और ससुरालवालों के दकियानूसी विचार उसे वहां से वापस आने के लिए मजबूर करता है। अब सवाल पैदा होता है कि किसने कितना त्याग किया। उपन्यास के अंत में संजीव यह चित्रित करते हैं कि अशोक ने विवाह नहीं किया और जीवन नामक उस बच्चे को संभाल रहा

है, जो छोटी ने इसलिए लाया था, क्योंकि उसके माता–पिता ने आत्महत्या की थी और उस कारण वह अनाथ था। अशोक का यह प्रेम जातिगत हीनता को चीरता हुआ एक उदात्त प्रेम बन जाता है। छोटी को अशोक पर एक अलग ही गर्व महसूस होता है।छोटी और अशोक के जीवन में जो समस्याएं उत्पन्न हुई, जिस कारण शिवनाथ को आत्महत्या करनी पड़ी, उसका भी मूल कारण जातिगत ही है।

मन्दिर का पुजारी ब्राह्मण है और निम्न जातियों की स्त्रियों का शारीरिक शोषण करना चाहता है। पहले तो वह शकुंतला को ही हथियना चाहता था, जब ऐसा सम्भव नहीं हुआ तो कलावती और अशोक के चरित्र के सन्दर्भ में भ्रान्ति फैलाकर उनका जीवन बर्बाद कर देता है। यहाँ पर संजीव ने पुजारी के चरित्र का चित्रण कर गाँव के समाज का वास्तविकता हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

भारतीय समाज में धर्म के साथ-साथ जाति और गोत्र का महत्व हजारों सालों से रहा है। जिससे मुक्ति पाना असंभव है। आज भारत में जातीयता एवं सांप्रदायिकता की दग्धता फ़ैल रही है। आज समाज में छुआ-छुत, जाति-पाति कम नहीं हुई है। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित समाज 'हम एक है' का नारा लगाता है तो दूसरी ओर अपने-अपने समाज को संघटित करता हुआ दिखाई देता है। डॉ. देवेश ठाकुर के विचार हैं- "एक ओर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था ओर स्वयं नगर नहीं ग्राम्य और आँचलिक स्तर पर ही जातिवाद का 'विष बीज' विकास पा रहा था, जिससे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मतभेद की खाई गहरी हो रही थी और व्यक्ति समाज जातिगत आधार पर अलग-अलग समूहों में विभाजिक और विचिछन्न होकर परस्पर द्वेष, ईर्ष्या और शत्रुता के भाव को बढ़ता हुआ राष्ट्रीय शक्ति एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शों को धूमिल कर रहा था।"[25]

इस तरह संजीव ने अशोक-कलावती और मंदिर के पुजारी के माध्यम से जाति-व्यवस्था का वास्तविक यथार्थ इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। अशिक्षा, अंधविश्वास आदि के चलते अभी भी गाँवों के समाज में अलग अलग जातियों में हीनता जैसी भावनाएँ विद्यमान हैं। दलित वर्ग को अभी भी समाज में छोटी जाति का आख्यान दिया जाता है। समाज में उच्चवर्ण कहे जानेवाली जतियाँ निम्न जातियों का

शोषण करती है। संजीव यहाँ अशोक-कलावती के प्रेम के द्वारा यह भी दिखाना चाहते हैं कि समाज में जातिभेद सिर्फ बुजुर्गों में मौजूद है। आजकल के नौजवानों एवं बालिकाओं में जाति को लेकर भेदभाव की प्रवृत्ति कम देखने को मिलता है। क्योंकि वर्तमान के लड़के-लडकियाँ गाँवों से निकल कर शहरों की ओर जा रहे हैं एवं विभिन्न देश-दुनियाँ से परिचित है। आज का युवा वर्ग यह जानता है कि हमारी ऐसी सोच के कारण हम अन्य देसों की तुलना में काफी पीछे हैं। समाज में इसी जाति व्यवस्था में भेद-भाव होने के कारण हिन्दू समाज ने अन्य धर्म ग्रहण कर लिए।

3.4. धार्मिक संघर्ष-

हर धर्म मानवता और प्रेम की सीख देता है। धर्म का प्रभाव हर समाज पर होता है। आज विज्ञान के युग में भी दलित समाज में धर्मान्धता के कारण अंधविश्वास, भूत-प्रेत, लोक-विश्वास, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, शकुन-अपशकुन, मनौती मनाना, पाप-पुण्य तथा उत्सव आदि का प्रचलन परिलक्षित होता है। धर्म के संबंध में डॉ. राधाकृष्ण ने अपना मत इस प्रकार दिया है– "धर्म वह अनुशासन है जो अंतरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई से संघर्ष करने में सहायता देता है। काम क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है। संसार को बचाने का महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है।"[26] धर्म एक शक्ति भी है और विश्वास भी। इसकी धारणा अर्मूत एवं अति प्राचीन है। धर्म के बारे में डॉ. ज्ञानचंद गुप्त ने लिखा है– "सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त विभिन्न पवित्र विश्वास ही धर्म है जो मानव-समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं एवं आकस्मिक आपदाओं को सहन करने का सम्बल प्राप्त करते हैं।"[27] इस कथन से यही जाहिर होता है कि धर्म एक ऐसा विश्वास है जो मनुष्य को संकट के समय सहन करने की शक्ति देता है। आदिवासी समाज अज्ञानी, अनपढ़ तथा अरण्य में रहने की वजह से इस समाज में देवता को प्रसन्न करने के लिए मनौतियाँ मनाना, बलि देना, दान देना, पाप-पुण्य, प्रायश्चित, पूजा करना, अंधश्रद्धा के द्वारा बर्बर कुप्रथाएँ तथा टोटका करना आदि धार्मिक कर्मकांड दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं बिन्दुओं को उपन्यासकार ने उपन्यास में सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। डॉ. राजकुमारी सिंह के शब्दों में- "भारतीय ग्रामीण अंचलों

में अनेक प्राचीन आस्थाएँ अब भी प्राचीन रूपों में विद्यमान है। आँचलिक उपन्यासकारों ने प्रत्येक अंचल को अपने नैसर्गिक अवस्था में चित्रित किया है। वस्तुत यह धर्म व संस्कृति के आधार पर वास्तविक आस्था व अंधविश्वास पूर्ण जीवन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।"[28]

देश के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन में आदिकाल से ही धर्म का विशिष्ट महत्त्व रहा है। धर्म किसी भी संस्कृति का प्रमुख तत्व होता है। बुद्धि के बल पर मनुष्य अपने जीवन में सुधार करता है। परन्तु उसे महसूस होने लगा कि प्रकृति और मनुष्य जीवन को नियंत्रित करने वाली कोई दिव्य और अलौकिक शक्ति है। इस शक्ति की कृपा हमेशा बनी रहे साथ ही यह जीवनक्रम सुव्यवस्थित चलता रहे इस भावना से धर्म की संकल्पना का निर्माण हुआ है। धर्म पर डॉ. रक्षापुरी के विचार है - "देश के सांस्कृतिक एवं सामाजिक-जीवन में आदिकाल से ही धर्म का विशिष्ट महत्त्व रहा है । इस धर्म का बुद्धि पक्ष जहां एक ओर दर्शन से संबद्ध रहा है वहाँ दूसरी ओर उसका भाव आचार एवं क्रिया-कलापों से संबंधित रहा है।"[29]

धर्म शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुआ है, जिसका अभिप्राय 'धारण करना' है। धर्म का मुख्य अर्थ नैतिक और मानवता है। परन्तु ग्रामीण अंचलों में मानवता और नैतिकता की जगह धर्म ने अनैतिकता का स्थान प्राप्त किया है। मानवता के स्थान पर जहर का काम कर रहा है। वर्तमान समय में धर्म लोगों को बाँटने का काम कर रहा है। ग्रामीण अंचल के इन्हीं धार्मिक तत्व को उपन्यासकारों ने उपन्यास में चित्रित किया है।

संजीव 'फाँस' उपन्यास में मन्दिर के पुजारी सदाशिव भागवत महाराज हर दिन आने-जाने वाली लड़कियों को वासना भरी नजरों से देखता है। धर्म कभी मानवों को शान्ति, सुरक्षा और एकता का पाठ पढ़ाता था, अब सदाशिव पुजारी जैसे लोग हैं जो धर्म का यह कार्य भूल गये हैं। वे धर्म का उद्देश्य लोगों में फूट डालना, उनका आर्थिक शोषण करना यही मानते हैं। यह किसान जीवन की बहुत बड़ी समस्या है। एक तो किसान अनपढ़ होता है और दूसरा निरंतर श्रम में लगे रहने के कारण उसमें धर्म के विषय पर चिन्तन करने के लिए समय नहीं होता है। ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर धर्म के माध्यम से ईश्वर और आधिभौतिक शक्ति का डर दिखाकर किसानों के भोलेपन का लाभ उठाया जाता है। यहाँ तक कि किसानों का शारीरिक और

लैंगिक शोषण भी होते रहता है। सदाशिव भगत की पूरी जिन्दगी दमित कामवासनाओं से निर्मित कुंठाओं में बीत रही है। जब गाँव की महिलाएँ उसकी कामवासना का शिकार नहीं होतीं तो उसकी कुंठित कामवासना विकृत होती है और गाँव में भ्रांतियाँ और अफवाहें फ़ैलाने लगता है, नतीजा निकलता है शिवनाथ की आत्महत्या।

जाति व्यवस्था के ऊंच-नीच के भेदभाव ने इतना विकृत रूप धारण किया कि एक समय छत्रपति महाराज को क्षत्रीय मानने से ही इंकार किया था। उस विचार का भी शायद पूर्व इतिहास था, जिससे भारत देश की आक्रामकता या युद्ध क्षमता को नष्ट किया। नतीजा भारत देश गुलाम हुआ। छत्रपति शिवाजी महाराज के इस सन्दर्भ को भी संजीव ने अभिव्यक्त किया है। धार्मिक संघर्ष की एक और महत्वपूर्ण उपकथा संजीव ने मोहन बाघमारे की कथा के माध्यम से व्यक्त की है। आर्थिक विवशता से बैल बेचने के बाद उलझन में फंसे मोहन बाघमारे को उबारने के बजाय पंडित निरंजन देव गिरी पूरा बैल ही बना देते हैं। पूरे एक साल तक बैल की तरह रहने का प्रायश्चित मोहन बाघमारे को निरंजन गिरी देते हैं। मोहन बाघमारे बैल की तरह बां-बां करते जीवन बिताई हैं। शायद निरंजन गिरी मोहन बाघमारे को उबारते अगर उनके पास पैसे होते, लेकिन दस रूपये में क्या हो सकता है? अपनी करतूत पर पछताने वाले मोहन बाघमारे धर्म के साथ भीषण मुठभेड़ में गिरे पशु बन जाते हैं और धर्म का उल्टा चक्र घूमता दिखाई देता है, क्योंकि धर्म की जिम्मेवारी मनुष्य को प्राणी से मनुष्य बनाना है, मनुष्य से प्राणी नहीं। निरंजन गिरी जैसे लोग अपने उदरभरण के लिए मानव को मनुष्य से प्राणी बनाने में लगे हुए हैं। धर्म के साथ होने वाले संघर्ष में भी इस तरह से किसानों को भीषण पराजय का सामना करना पड़ रहा है।

किसी धर्म-विशेष को मानने वाले रूढ़ि, रीति-रिवाजों को अपनाने के लिए विवश होते हैं क्योंकि उसके पीछे अंधविश्वास रहता है। जब कोई व्यक्ति किसी भी चमत्कार अथवा होनी-अनहोनी बात पर बिना कुछ सोचे-समझे विश्वास करने लगता है तो उस विश्वास को हम अंध विश्वास कहते हैं या फिर तर्कहीन विश्वास ! अगर भारतीय समाज की बात करें तो यहाँ अंधविश्वास की जड़े बहुत गहरी और पुरानी हैं। कुछ

लोग विशेष तिथि, विशेष दिन, रंग या फिर दिशा को शुभ और अशुभ मानते हैं। यह सब अंध विश्वास नहीं तो और क्या है। अंधविश्वास भय को जन्म देता है।

इसी तरह 'फाँस' उपन्यास में भी दर्शाया गया है कि भारत में हर वर्ग के लोगों के अंदर अंधविश्वास बहुत गहरे तक घर करके बैठा है। चाहे किसान हो या गरीब हो या अमीर हो, गाँव का हो या शहरी या आदिवासी, चपरासी से लेकर उच्चाधिकारी तक, सिपाही से लेकर कमांडर तक, मजदूर से लेकर प्रधानमन्त्री तक, राजा से लेकर रंक तक हर कोई कहीं न कहीं थोड़ा बहुत अंधविश्वासी जरुर होता है। कुछ लोग तो समाज के सामने ही इन अंधविश्वासों में अपनी आस्था प्रकट कर देते हैं तो कुछ समाज के सामने तो विश्वास नहीं करते, लेकिन जब अपनी उन्नति, जाति, परिवार के सदस्यों के लाभ-हानि की बात आती है तब इन अन्धविश्वासो में विश्वास प्रकट करते हैं। संजीव ने 'फाँस' में यह बताया है कि अम्बेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव विदर्भ में स्पष्ट दिखाई देता है। शेतकारी किसान शिबू की मौत के बाद, बौद्ध मत से, सरस्वती और कलावती का विवाह होता है। दोनों का विवाह किसी तरह समाज द्वारा सम्पन्न होता है, दोनों जोड़े कसम खाते हैं, 'मैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भगवान नहीं मानूँगा, न ही उनकी पूजा करूँगा। मैं पाखंडवाद का विरोध करूँगा।' 'मैं ब्राह्मण के हाथ से कोई कर्मकाण्ड नहीं करूँगा।' विवाह सम्पन्न हो जाता है, अशोक कलावती को विदा होते देखता रहता है। दिल अटूट है। अगले दिन पता चलता है, अशोक घर छोड़कर चला गया है। हम किसी भी धर्म को मानें, हमारी मान्यताएँ, जिन्दगी की मर्यादाएं पुरानी-की-पुरानी ही बनी रहती हैं, कलावती एक प्रगतिवादी चेतना से पुष्ट पात्र है, वह विवाह इस शर्त पर करती है कि विवाह के बाद उसे पढ़ने दिया जायेगा। लेकिन उसके बाद उसे वही पुरानी मर्यादाएं ही मानने के लिए बाध्य किया जाता है, वह अपने गाँव में सात दिन के अंदर बिजली लाने में सफल हो जाती है, पूरा गाँव उसकी सराहना करता है, लेकिन उसका परिवार उसे बेहया कहता है। बदले में पति पत्नी का झगड़ा होता है। और वह घर छोड़कर चली आती है, जब वह अपनी माँ से मिलती है तो वह कहती है, 'मैं जानती थी, तू भाग आयेगी, तुझे कोई रोक नहीं सकता, तू आग है, आग।' शकुन्तला अपने पति के मरने के बाद कुएँ को पाट देती है और जमीन शोभा को बेच देती है, थोड़ा-सा हिस्सा ही अपने पास रखती है, वही भाग

जहाँ शिबू को दफनाया गया है। शकुंतला अब कहने भर को किसान है, वह अब शराबबंदी और अन्य सामाजिक कुरीतियों के विरोध में लड़ती है। वह 'भट्ठी भंजक दल' की प्रमुख है। इस की कुप्रथाएं समाज में अभी भी व्याप्त है। 'फाँस' में इसका अंकन बहुत ही मार्मिक ढंग से लेखक ने प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षत: हम यह देख सकते हैं कि दलित समाज में परंपरागत रूप से अंधश्रद्धा, पाप-पुण्य, मनौतियाँ, शुभ-अशुभ, टोना-टोटका, भूत-प्रेत आदि का प्रचलन अधिक मात्रा में मिलता है। हमारे देश में जाति, धर्म या लिंग पर आन्दोलन या साहित्यिक विमर्श तो बनते हैं, लेकिन कृषि जैसे व्यवसाय पर कोई साहित्यिक विमर्श नहीं बन पाता। किसानों की आवाज आज भी आधी रात में सुनी किसी भयानक चीख को नजर अंदाज करने जैसी या जानबुझकर जल्द-से-जल्द भूलने की कोशिश की जाती है या अनसुनी की जाती है। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार संजीव द्वारा उस चीख की दिशा ढूँढ़कर उस ओर जाकर, उस समस्या का कारण ढूँढ़ने का प्रयास निश्चित ही महान है।

3.5.- जनमानस पर उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव-

'उपभोक्तावाद' समकालीन समाज की ऐसी परिघटना है जिससे सभी संवेदनशील और लोकहित के प्रति समर्पित इंसान चिंतित है। इसके लिए अंग्रेजी में 'Consumerism' (कंज्यूमरिज्म) शब्द प्रचलित है। उत्पादन और उपभोग मानव सभ्यता के विकास का अनिवार्य अभिलक्षण है। सभ्य मनुष्य ने उपभोग का संस्कार विकसित कर लिया है। वह उन चीजों का उत्पादन करता है जिनकी उसे जरूरत पड़ती है। उपभोक्ता वह है, जो उपयोग के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय करता है। यदि कोई फुटकर व्यापारी किसी थोक-विक्रेता से वस्तुएँ (जैसे स्टेशनरी का समान) खरीदता है, तो वह उपभोक्ता नहीं है क्योंकि वह तो वस्तुओं का क्रय पुन: विक्रय के लिए कर रहा है।

लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से प्रचार के द्वारा उसके लिए जरूरी बना दी गई है, यह उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है। उपभोक्तावाद एक ऐसी परिघटना है जिसमें जरूरत के लिए नहीं, अपितु मुनाफे के लिए उत्पादन होता है और उत्पादित वस्तु के अनुरूप उपभोक्ता की इच्छाएँ ढाल दी जाती है। बचपन के दिनों में

अपने स्कूल में हम प्रात: कालीन प्रार्थना के समय नारा लगाते थे – 'सादा जीवन उच्च विचार ।' हमारे जीवन में इस नारे का असर भी पड़ता था क्योंकि इर्द-गिर्द ऐसे सादगी भरे जीवन जीनेवालों की भरमार थी पर आज स्थिति ठीक इसकी उल्टी है। मीडिया तत्रं ने उपभोक्तावादी चेतना को निर्मित करने और फैलाने में बड़ी भूमिका निभाई है । प्रिंट मीडिया के बाद अब यह जो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आया है, उसने न सिर्फ उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापनगत प्रचार द्वारा उपभोक्तावाद के दायरे को बढ़ाया है बल्कि यह भी किया है कि जो चीजें पहले उपभोक्ता वस्तुएँ नहीं मानी जाती थी, पुनरुत्पादन करके उन्हें भी इस बाजारवादी अर्थतत्रं का हिस्सा बना लिया है। अर्थशास्त्री गिरीश मिश्र के शब्दों में- "उपभोक्तावाद वह सिद्धांत है जो मानकर चलता है कि वस्तुओं और सेवाओं का जितना अधिक उपभोग होगा अर्थव्यवस्था पर उतना ही अनुकूल असर पड़ेगा । मागं की मात्रा में कमी के कारण बिना बिके माल की समस्या उत्पन्न होगी । यह सिद्धांत वस्तुओं और सेवाओं की मांग उनके उपयोग मूल्य के कारण करने पर जोर नही देता, बल्कि संभावित उपभोक्ताओं को उनके प्रतीक मूल्य या प्रतिष्ठा मूल्य को ध्यान में रखकर खरीदारी के लिए उकसाता है।"[31]

संजीव ने 'फांस' उपन्यास में दर्शाया है कि- "उदारीकरण के चलते सरकार का रवैया ही कारपोरेट वाला हो चुका है–बिल्कुल ठुस्स यांत्रिक। कारपोरेट कल्चर या बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जाहिर तौर पर किसी बड़ी पूँजी की प्रसूत होती है, बड़ी पूँजी बाजार में लाभ कमाने के उद्देश्य से आती हैं। उसकी सामाजिक जिम्मेवारी सिर्फ इतनी होती है कि ग्राहक या उपभोक्ता जिन्दा रहे। इन्हें और इनके प्रतिनिधि नेताओं को जमीन, गुणवत्ता, सिंचाई की प्रकृति और पैदावार से कोई मतलब नहीं। कई नेता तो जानते भी नहीं कि आलू ऊपर फलता है या नीचे, खेती धान की होती है या चावल की, सरपट और गन्ने के पौधे में क्या फर्क है।"[32]

किसानों को बाजार से संघर्ष करना पड़ता है। किसानों का बाजार से होने वाला यह जबरदस्त संघर्ष संजीव ने 'फांस' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। किसानों के बाजार के साथ होने वाले संघर्ष के दो रूप हैं। पहला है, जब वह बाजार में अपने परिवार के लिए या कृषि के लिए आवश्यक कोई चीज खरीदने के लिए

जाता है, तब वह दोनों बार लूटा जाता है। जब वह बाजार में कृषि उत्पादन बेचने जाता है, तब उसका माल बेहद कम मूल्य में बेचने के लिए मजबूर किया जाता है। बाजार में व्यापारियों की इस साठ-गाँठ को मराठी के उपन्यासकार विश्वास पाटिल ने 'पांगिरा' में प्रभावी तरीके से व्यक्त किया है। 'फाँस' उपन्यास में आशा का पति सुरेश वानखेडे डेढ़ क्विंटल कपास और आधा क्विंटल सोयाबीन बेचने के लिए मण्डी जाता है, तब माल आवक देखकर व्यापारी भाव गिरा देते हैं। सम्भवतः सन 2014 के आँकड़े उपन्यासकार देते हैं कि 2 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में कपास और ढाई लाख हेक्टेयर में सोयाबीन है। 10 से 20 हजार क्विंटल सोयाबीन मार्केट में प्रतिदिन आ रही है, इसलिए व्यापारियों ने भाव गिरा दिए तो फिर माल बेचना मुश्किल हो जाता है। फिर मण्डी में दो-तीन दिन अपने माल की रक्षा करना, खाना, पीना, सोना यह सब मुसीबतें हैं। इन सारी समस्याओं को व्यक्त करते हुए एक किसान कहता है- "मैं तो यार घर से ओढ़ने के लिए भी नहीं लाया कुछ। रात भर कुकड़ाता रहा ठंड से। बारह के बाद ठंड सही नहीं जाती। धोती खोलकर ओढ़ी मगर कहाँ? ऐसा ही रहा तो मैं तो बनियों को बेचकर चला जाऊँगा। जब देश का हर फैसला देशी –विदेशी बनियों को ही करना है तो सरकार क्यों हमें चूतिया बना रही है।"[33] भारतीय किसानों के जीवन का यह जबरदस्त संर्घष वास्तव में बहुत कम साहित्यिक कृतियों में या सभा-सम्मेलनों में व्यक्त हुआ है। जमीनी सच्चाई तो यह है कि कृषि के लिए बीज और खाद खरीदने वाले किसानों पर पुलिस ने इसलिए लाठियाँ चलाई हैं कि वे बीज और खाद सही दामों पर माँग रहे थे, सस्ते में नहीं, जबकि व्यापारी उसे दुगने-तिगुने दामों में बेच रहे थे। देशी बनिये तो किसानो को लूटने में लगे ही हैं, विदेशी कम्पनियाँ भी इस काम में लगी है। और दुर्भाग्य से हमारे राजनेता और नीति-निर्माता किसानों की इस खुली लूट में विदेशी कम्पनियों की सहायता कर रहें हैं। इस उपन्यास में मोंसेंटो कम्पनी के बी. टी. कॉटन के उत्पादन को लेकर गलत प्रचार, झूठे वादे, पेड न्यूज आदि का भंडाफोड़ किया गया है। मोंसेंटो कम्पनी ने दावा तो यह किया था कि जेनेटिकली मोडिफाइड बीज अर्थात् बी. टी. काटन को कीटनाशक नहीं खाएँगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। कीटक बचे रहे और कपास को बचाने के लिए भारी क्षमता वाले कीटनाशक प्रयोग करना पड़ा। इससे पर्यावरण में असंतुलन स्थापित होने का संकट उत्पन्न हो गया। मोंसेंटो ने बी. टी. का बीज 930 रूपये प्रति किलो बेचा जबकि देशी बीज 7

रूपये किलो था। इस तरह से किसान का कृषि उत्पाद का मूल्य बहुत बढ़ गया। अकेली मोंसेटो कम्पनी को 1,600 करोड़ रूपये मिल गये। मोंसेटो के साथ अन्य भारतीय कम्पनियों द्वारा यह भ्रम फैलाया गया कि भारतीय किसानों को 40,000 करोड़ का लाभ हो रहा है। उपन्यासकार संजीव बड़ी स्पष्टता से लिखते हैं- "सफलता व लाभ की यह 'पेड न्यूज' माने पैसे देकर छपवायी जाने वाली खबरें, गढ़ी गयी पैसों पर बिके पत्रकारों से, पैसों पर बिके फिल्मकारों से, पैसों पर बिके नेताओं से और स्वयं कृषिमंत्री द्वारा फैलायी गयी। हमारे साथ छल हुआ, छल-धोखा, सबने किया। फल यह कि सन् 1995 से सन् 2010 तक समूचे देश में आत्महत्या करने वाले कुल किसानों की संख्या हो गयी 2 लाख 56 हजार 910।"[34] बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा इस गलत प्रचार की वास्तविकता यह है कि कपास बाजार में बेचने के लिए किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। भाव गिरा दिये जाते हैं। व्यापारी और नेता, अधिकारी मिलकर लूट का षड्यंत्र रचते हैं, नतीजा यही है कि किसी भी कृषि उत्पाद का भाव इतना भी नहीं मिलता कि जिससे उसका उत्पाद खर्च निकलकर बचे हुए में वह अपना ठीक-ठीक गुजर-बसर कर सकें। समाचार-पत्रों में पिछले कुछ सालों में गोदामों या रेलवे डिपो में अनाज के सड़ने की खबरें छपती रही हैं। एक और देश में गरीबी, भुखमरी जैसी समस्याएँ हैं, तो दूसरी ओर अनाज सड़ रहा है। यह क्यों होता है? उसका कारण यही है कि यह जानबूझकर किया जाता है, जो राजनीति, सरकार में बैठे नीति-निर्धारक और अधिकारी मिल-जुलकर निर्माण कर रहे हैं। जिससे किसानों को संघर्ष करना पड़ रहा है।

इस प्रकार इस उपन्यास में में भी जगह जगह पर संजीव ने उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव का यथार्थ चित्रण दिखाया है। आज इस उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते किसान को उनके अनाज का उचित मूल्य नहीं मिलता है। किसान अपना सम्पूर्ण जीवन खेती करने में दे देते हैं पर उसका लाभ कोई और उठाता है। संजीव ने इस उपन्यास में उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते किसान पर क्या असर पड़ता है उसका उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'फाँस' उपन्यास में समाज में प्रचलित अंविश्वास, कुप्रथाएँ, अज्ञान, गरीबी, बेकारी, तथा शोषण का यथार्थ चित्रण हुआ है । निम्नवर्गीय समाज के गरीबी, बेकारी, असुरक्षित जीवन का तथा उच्च वर्ग द्वारा शोषण का यथार्थ अंकन हुआ है। भारतीय समाज में प्राचीन काल में पुरुष प्रधान संस्कृति रही है। पुरुष की तुलना में आज भी नारी को चार दीवारों के अंदर ही रहना पड़ता है। आज शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होने के कारण स्त्री पढ़ लिखकर अपने अधिकारों के लिए जाग्रत हो रही है और समाज में अपनी पहचान बना रही है । पुरुष के कंधे से कंधा लगाकर कृषि और हर क्षेत्र में अपनी क्षमता सिद्ध कर रही है । लेकिन यह प्रमाण अल्प है । प्राचीन काल की तरह आज भी समाज में नारी को एक भोग्य की वस्तु की रूप में देखा जाता है। गुलाम की तरह उसके साथ बर्ताव किया जाता है। संजीव के कथा-साहित्य में पारिवारिक मानसिक-शारीरिक एवं लैंगिक शोषण का चित्रण परिलक्षित होता है । शिक्षा एवं रोजगार की समस्या आये दिन किसानों के बच्चे को देखना पड़ता है । एक तरह देखा जाय तो मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है । मानव जीवन को सुसंस्कृत करने और उसे विकास के पद पर ले जाने में शिक्षा सहायता करती है। भारत सरकार शिक्षा प्रसार एवं प्रचार के लिए कार्यरत है। आधुनिक काल में शिक्षा का महत्व बढ़ गया है, क्योंकि आज पढ़ने लिखने वालों को साक्षर नहीं माना जाता बल्कि जिसे कम्प्यूटर चलाना आता है और अंग्रेजी बोलना आता है उसे साक्षर कहा जाता है। आज भी हमारे देश में दलित और किसानों को अर्थाभाव के कारण शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है, जैसे संजीव के 'फाँस' उपन्यास में कलावती और सरस्वती को स्कूल जाने से मना किया जाता है। समाज के लोग उन्हें तरह-तरह के ताने मारने लगते हैं। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण है जातीय व्यवस्था के कारण समाज में एकता के लिए बाधा उत्पन्न हो रही है । समाज में अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, सवर्ण-दलित आदि बहुत सारे भेद खड़े हो गये हैं। इस सामाजिक भेदा-भेद के कारण शोषण की समस्या निमार्ण हुई है। ऊँच-नीच, भेदा-भेद के कारण समाज का ऊपर का तबका निचले सामाजिक तबके का शोषण करता रहा है जाति व्यवस्था को लेकर 'फाँस' उपन्यास में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत हुआ है । इस उपन्यास में धार्मिक संघर्ष का

यथार्थ चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में संजीव ने उन उच्च वर्ण के लोगों की पोल खोली है जो उच्च उच्च कोटि की बात करते हैं और कार्य निम्न कोटि का करते हैं। मंदिर का पुजारी में इस प्रकार के लक्षण विद्यमान है। उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते समाज में आज किसानों का हालत बद से बदतर होती जा रही है। समाज में अगर उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रचलन नहीं होता तो किसान आज सुखी संपन्न होते।

सन्दर्भ-

1. डॉ. इकबाल अहमद, महाकवि जायसी और उनका काव्य : एक अनुशीलन, पृ. सं. -225

2. सं.एन.के.महला, वर्ग विचारधारा एवं समाज, पृ. सं.-144

3. सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पृ. सं.- 914

4. अनूप शुक्ल, आकांक्षा और यथार्थ, पृ. सं.- 33

5. संजीव, कुछ तो होना चाहिए न, पृ. सं.-89

6. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 27

7.वही. पृ. सं.- 22

8. वही, पृ. सं. -110

9. वही, पृ. सं. -110

10.डॉ. शशिभूषण सिंहल, हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियां, पृ. सं. -99

11. सं. पाण्डेय रतनकुमार, अनभौ, दिसंबर 2004, पृ. सं.- 21

12. डॉ. कुलकर्णी रेखा, हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ. सं.- 50

13. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 150

14. वही, पृ. सं. -184

15. वही, पृ. सं. -16

16. वही, पृ. सं.- 20

17. वही, पृ. सं.- 21

18.वही, पृ. सं.-147

19.वही पृ. सं.-14

20.वही पृ. सं.- 47

21.वही पृ. सं.- 61

22.भरत झुनझुनवाला, वर्ण व्यवस्था, पृ. सं.- 121-122

23.वही पृ. सं.- 13

24.संजीव पृ. सं.- 61

25.डॉ. देवेश ठाकुर, मैला आँचल की प्रक्रिया, पृ. सं.-68

26. भैरव प्रसाद गुप्त, डॉ. सुनंदा पालकर, समाजवादी उपन्यास पृ. सं.-127

27. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृ. सं.-189

28. राजकुमारी सिंह, हिंदी-अंग्रेजी के आँचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ.सं.- 245

29.डॉ. रक्षापुरी, प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज, पृ. सं. -204

30. संजीव, किसनगढ़ के अहेरी, पृ. सं.- 40

31.अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. सं.-93

32.संजीव, फाँस, पृ. सं.-111

33. वही, पृ. सं.-141

36. वही, पृ. सं.- 190

चतुर्थ अध्याय

'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन का यथार्थ

भारत कृषि प्रधान देश है। गाँव में निवास करने वाले अधिकांश लोग अपनी आजीविका के लिए पूर्णरूप से कृषि पर निर्भर है। देखा जाए तो भारत की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि ही है - "भारतीय जीवन तथा सभ्यता का मूल स्रोत कृषि है और उनका विस्तार ग्रामजीवन में ही परिलक्षित होता है।"[1] भारतीय सन्दर्भ में जब भी किसान जीवन की बात की जाती है तो तपती हुई धुप में खेती करता किसान और उसके परिवार, मिट्टी से खून-पसीने की खुशबू, लहराते सुनहरे खेत, हाट-बाजार, मेला-पर्व आदि का दृश्य मन-मस्तिष्क को पुलकित कर देता है। संयुक्त परिवार से भरा हुआ घर स्वच्छ वातावरण, बड़ो का आर्शीवाद, बच्चों की किलकारी, नदी के तट पर कमर में गागर और सिर पर बोझ लेकर चलती स्त्रियाँ, फल-फूल से लदे पेड़-पौधें, पके खेतों की महक आदि का दृश्य आखों के सामने आती है।

कृषि ही भारतीय अर्थव्यवस्था एवं भारतीय जीवन की मुख्य धुरी है। ग्रामीण समाज में अधिकांश जीवन कृषि के ऊपर ही निर्भर है। ग्रामीण समाज सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से कृषि पर निर्भर है। खेती में पुरुषों के समान महिलाओं का योगदान महत्वपूर्ण है। महिलाओं को ग्रामीण अर्थव्यवस्था का रीढ़ भी कहा जाता है, विकासशील देशों में इनकी भूमिका अहम रहती है। किसान जीवन के इन्हीं खट्टे-मीठे अनुभवों को साहित्यकार ने अपने साहित्य में उकेरा है।

'फाँस' उपन्यास में संजीव ने किसान जीवन का मनोरम रूप चित्रित किया है- "इसमें अशिक्षा भी, गरीबी भी, आत्महत्या भी, मजबूरी भी, लाचारी भी, प्रलोभन भी, यथार्थ रूप में अंकन हुआ है।"[2] संजीव ने किसानों की दर्दकथा और आत्महत्या के फेरे में फँसे उनके यथार्थ जीवन को उपन्यास में चित्रित किया है। इस उपन्यास के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म किसान जीवन और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्त की गयी है। किसान के पिछड़ेपन, दुःख-दैन्य, अभाव, अज्ञान, अधंविश्वास के साथ विविध सामाजिक और किसान

जीवन की गाथा को व्यक्त किया है। 'फाँस' उपन्यास में संजीव ने यथार्थ के रूप में कहा कि- "पिछले बरस सात हजार किसानों ने आत्महत्या की थी। अखबार, रेडियो, टी.वी सबने अफीम खा ली, खबर तक न हुई।"[3]

हिन्दी-मराठी भाषा के मिश्रण से बुना गया संजीव का यह नया उपन्यास 'फाँस' सम्भवत: अपनी ही शैली का अनूठा उपन्यास है, जो एक वृहत्तर समस्या को लक्षित करता है। यहाँ विदर्भ में आत्महत्या करते किसानों की रपट है। मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि- "भारत में अब तक तीन लाख से अधिक संख्या में किसानों ने आत्महत्या की है। यह मानवता के इतिहास की एक भयानक त्रासदी है और अमानवीय समाज–व्यवस्था का भीषण अपराध के प्रतिरोध की प्रवृत्ति पैदा करनेवाला यह उपन्यास 'फाँस' प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की प्रगतिशील परम्परा का आज की स्थिति में विकास करेगा। संजीव ने इससे पहले भी ऐसी कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। यह उपन्यास संजीव की मूलगामी और अग्रगामी कथा-दृष्टि का एक प्रमाण है।"[4] किसानों के आत्महत्या को देखते हुए मराठी के सुविख्यात कवि विट्ठल बाघ की ये पंक्तियाँ विदर्भ के सुखाड़ से देश की संसद तक गूंजनी चाहिए थीं पर फाँसी लगाकर पेड़ से झूलते शेतकारी की घुटी हुई चीख की तरह ये पंक्तियाँ भी वीरान खेतों के बियाबान में कहीं बिला गयीं। किसानों की आत्महत्याओं पर उठीं तमाम तरह की आवाजें, रुदन, शोर, नारे सब कहीं किसी खोह में, किसी अँधेरी गुफा में समा गये और वे कभी वापस न आ सकें इसके लिए उन गुफाओं, खोहों के मुँह पर कभी न हिलायी जा सकने वाली बड़ी-बड़ी योजनाओं और आयोगों की चट्टानें धर दी गयीं।

"ऐसा क्यों होता है साहेब राव ?

"ऐसा क्यों होता है ?

क्यों मेरे ही हाथ मुझे बाघ के पंजो जैसे दिखाई देते हैं ?

तुमने आत्महत्या नहीं की !

हमने ही तुम्हारा खून किया ...

तुम्हारा और तुम्हारे बीवी बच्चों का ...

तुम हमें माफ़ करना साहेब राव ..."[5]

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार हर रोज दस किसान आत्महत्या करते हैं । महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, और पंजाब से किसानों की आत्महत्याओं के प्राप्त होने वाले आँकड़े चौकाने वाले हैं । ताजा आँकड़ो के अनुसार- वर्ष 2014 के मुकाबले वर्ष 2015 में किसान आत्महत्याओं में 2% की बढ़ोत्तरी हुई है और अब यह प्रतिशत बढ़कर 42% हो गया है । 30 दिसंबर 2016 को जारी एन.सी.आर.बी. रिपोर्ट 'एकिस्देंत्ल डेठस एंड सुसाइड इन इंडिया 2015' के अनुसार वर्ष 2015 में 12,602 किसानों और खेती से जुड़े मजदूरों ने आत्महत्या की। वर्ष 2014 में यह संख्या 12,360 थी जबकि वर्ष 2015 में यह संख्या बढ़कर 12,602 हो गई । इस प्रकार देखा जाय तो वर्ष 2014 के मुकाबले वर्ष 2015 में किसानों और खेती से जुड़े मजदूरों के आत्महत्या के मामले में 2 फीसदी की बढ़ोत्तरी हुई। इन आँकड़ो के अनुसार महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की है । सूखे की वजह से साल 2014 और 2015 खेती के लिए बेहद ख़राब साबित हुआ। इसका सबसे ज्यादा असर महाराष्ट्र में दिखाई दिया। इन मौतों में करीब 87.5 फीसदी केवल सात राज्यों में ही हुई हैं। साल 2015 में महाराष्ट्र में 4,291 किसानों ने आत्महत्या की। किसानों की आत्महत्या के मामले में महाराष्ट्र के बाद कर्नाटक है। कर्नाटक में वर्ष 2015 में 1,569 किसानों ने आत्महत्या कर ली। तेलंगाना (1400), मध्य प्रदेश (1290), छत्तीसगढ़ (954), आंध्रप्रदेश (916) और तमिलनाडु (606) भी इसमें शामिल हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार किसानों और खेतों में काम करने वाले मजदूरों की आत्महत्या का कारण कर्ज, कंगाली, और खेती से जुड़ी दिक्कतें हैं। आँकड़ो के अनुसार आत्महत्या करने वाले 73 फीसदी किसानों के पास दो एकड़ या उससे भी कम जमीन थी। ताजा जनगणना आंकड़ों के अनुसार पिछले कुछ वर्षों में किसानी छोड़ चुके किसानों की संख्या 80 लाख से भी अधिक है। इसका कारण शायद एक ठोस व कारगर कृषि-नीति का अभाव है। इस

प्रकार आज खेती-किसानी एक मजबूरी और संभावित मौत का नाम है। यह एक ऐसा मार्ग है जिस पर कोई विकल्पहीनता की ही स्थिति में चले तो चले, पर स्वेच्छा से इस पर कोई नहीं चलना चाहता। फिर भी इस देश में विकल्पहीन किसानों की कमी नहीं है। बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके पास खेती-किसानी के अलावा और कोई चारा नहीं है। एक शेतकारी (शिबू) की बेटी कलावती कहती भी है- "इस देश के सौ में से चालीस शेतकारी आज ही खेती छोड़ दें अगर उनके पास कोई दूसरा चारा हो। 80 लाख ने तो किसानी छोड़ भी दी।"[6]

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। लेकिन सबसे अधिक उपेक्षा यहाँ किसानों की ही है। प्रेमचन्द का किसान साहूकार के कर्ज के बोझ तले दबा-दबा दम तोड़ देता था। तब से अब तक किसान के हालात बद से बदतर हो गये है। वैसे भारत में किसान सम्पन्न नहीं रहा है उसकी फसल कभी ओलावृष्टि और कभी सूखे का शिकार तो कभी प्राकृतिक विपदा, तो कभी अधिक वर्षा हो जाती है, अगर किसी तरह बचती है तो तरह-तरह के कीटों, टिड्डियों का आक्रमण उससे भी पार लगे तो बन्दर, भालू और सुअरों जैसे-जंगली जानवरों के चलते बर्बाद। इसके बाद भी बचकर फसल हाथ में आती है,तो कोई खरीदार नहीं मण्डी लेकर गये तो सेठ-साहूकार की मिलीभगत। कोई माल नहीं उठाता है। इस तरह किसान मजबूर होकर मिट्टी के मोल पर बेचने को बेबस हो जाते हैं। कर्जदार तंग करता है। इसी बात का खुलासा संजीव ने अपने 'फाँस' उपन्यास में किया है। और वो कर्ज न दे पाने के कारण आत्महत्या करने को तैयार हो जाता है। इसी कारण इस उपन्यास के सन्दर्भ में प्रेमपाल शर्मा कहते हैं- "फाँस खतरे की घंडी भी है और आत्महत्या के विरुद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और जमीनी संजीवनी का संकल्प भी।"[7]

खेती से किसान का भावनात्मक रिश्ता है और इस भावनात्मक के कारण वह किसानी को छोड़ नहीं पाता, दिमाग में जोर डालकर सोचने के बावजूद किसान बनी-बनाई परम्पराओं, रीति-रिवाजों का विरोध नहीं कर पाता है और यह कारण है कि वह इसी चक्रव्यूह में फंसा रहता है, ऊँची पढ़ाई के लिए पैसे न होने के कारण किसान के बच्चे आधुनिक तकनीक और शिक्षा से दूर रहते हैं, अत: पीढ़ी-दर-पीढ़ी खेती ही

एक जरिया होती है, जीने का सहारा, और खेती छोड़कर मजबूर बन जाने की पीड़ी का भाव भी किसान को कचोटता रहता है। किसान बैलों को भी परिवार का सदस्य मानता है, "बैल नहीं भाई है मेरा।"[8]

संजीव के 'फाँस' उपन्यास का उत्तरार्ध आदर्शवादी है, इसके पूर्वार्ध भाग को पढ़कर यही लगता है कि प्रेमचन्द के समय के किसान और आज के समय के किसान जीवन में कोई मूलभूत अतंर नहीं है, जबकि वह दौर गुलामी का दौर था, यह दौर आजादी का दौर है, दोनों के समयों में मूलरूप से लगभग 80 वर्षों का अंतर है। लेकिन किसान जीवन की स्थितियां ज्यों-की-त्यों हैं। होरी सब कुछ झेलकर भूखे पेट मरा, और शिबू भी सब कुछ झेलकर भूखे पेट मरा, प्रेमचन्द के 'गोदान' का फलक अलग है, संजीव के 'फाँस' का अलग। 'गोदान' का अगला चरण है 'फाँस'। 'गोदान' में होरी के जीवन में कोई आदर्श किसानी का रूप नहीं दिखाई देता है, जो ठोस रूप में अपनाया जा सके लेकिन संजीव के 'फांस' उपन्यास में इसके आगे की बात को रखा गया है, हाँलाँकि दोनों के क्षेत्र अलग है, 'गोदान' किसान पर है, 'फाँस किसानी पर। एक विद्वान ने कहा है कि- "शेती कोई धंधा नहीं, बल्कि एक लाइफ स्टाइल है-जीने का तरीका।"[9] जिसे किसान अन्य किसी भी धंधे के चलते छोड़ नहीं सकता। सो तुम बाबा ...तुम लाख कहो कि तुम शेती छोड़ दोगे, नहीं छोड़ सकते। किसानी तुम्हारे खून में है।

'फाँस' की टिप्पणी में मैनेजर पांडे ने लिखा है कि- "यह उपन्यास प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की प्रगतिशील परम्परा का विकास है।"[10] यह सच है प्रेमचंद के गोदान का किसान होरी, अभाव में ब्राह्मण को गोदान न कर पाने की असमर्थता बोध से प्राण त्यागता है, वहीं संजीव का किसान शेतकारी आंदोंलन में बाघ की तरह दहाड़ने वाला मोहनदास बाघमारे गले में रस्सी बाँध स्वयं गाय बनकर जीता है। दोनों के किसान ब्राह्राणवादी शोषक व्यवस्था के प्रतीक है। इस तरह उपन्यासकार बताता है कि विदर्भ के गाँव किस तरह श्मशान भूमि में बदलते जा रहे हैं। विदर्भ ही नहीं, विदर्भ को केन्द्र में रखकर उन्होंने तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, बुंदेलखंड सभी जगह के किसानों की दुर्दशाओं को बताने का प्रयास किया है। यही नहीं देश की सीमा लाँघकर वह सात समन्दर पार अमेरिका के किसानों के पास भी पहुँचता है। वह बताता है कि वहां के

किसानों की भी यही दुर्दशा होती, अगर सरकार से उन्हें अरबों डॉलरों की सब्सिडी नहीं मिलती। यह बात इसलिए भी प्रासंगिक है, क्योंकि एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में सरकार समाज के कमजोर वर्ग के लिए 2,51,397 हजार करोड़ और कारपोरेट सेक्टर के लिए 5,90,000 हजार करोड़ की सब्सिडी देती है। इस कमजोर तबके में ग्रामीण और शहर के भी लोग भी हैं। दोनों की इतनी बड़ी आबादी को मिलाकर दी जाने वाली सब्सिडी कारपोरेट सेक्टर को दी जाने वाली सब्सिडी से आधे से भी कम है, जबकि कारपोरेट सेक्टर जनसंख्या का एक प्रतिशत भी नहीं है। कृषि पर आधारित होकर जीने वालों की संख्या आबादी का 70 प्रतिशत है। अब इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि इन्हें कितनी सब्सिडी मिल रही है। ऊपर से कृषि द्वारा आयी आमदनी को फिर से औद्योगिक क्षेत्र में झोंका जा रहा है। इसी से पता चलता है कि कृषि प्रधान देश भारत में कृषि का क्षेत्र कितना उपेक्षित है। यही किसानों के संक्षोम का एक बड़ा कारण है।

संजीव ने 'फाँस' उपन्यास में शिबू ऐसा किसान है जो बैंक का कर्ज न चुका पाने के कारण अपनी पत्नी यानि शकुन के गंले का हंसुली बेचने को कहता था- "रानी ये कर्ज गले की फाँस है निकाल फेंको और जिस दिन मैंने निकाल फेंका, वह जैसे निहाल हो गया, गाँव भर में लड्डू बंटे, गीत गाते हुए बरसात में भीगते हुए नाचता रहा। रह-रहकर गले को देखता, चूमता-उस दिन देखा था तेरा रूप-गले में हँसुली निकाल रही थी तू, तमतमाया चेहरा, फटकर बाहर निकल पड़ने को बेताब आँखे...जैसे हँसुली नहीं प्रान खींचे चले आ रहे थे, मगर तूने छोड़ा नहीं। फाँस को गले से निकाल ही फेंका। घर आये। पानी बरस रहा था, वह उसी गले से लिपट गया-अब तक इस फाँस ने मुझे मुझसे दूर रखा..आज अब और नहीं।"[11] किसानों के जीवन को लेकर सरकार नये-नये तरह के प्रयोग करती है। कोई भी वैज्ञानिक उनके जमीनी वातावरण का अध्ययन नहीं करता है, इस सन्दर्भ में लेखक कहता है कि- "दिल्ली में ही बैठकर क्यों बना ली सरकारों ने हमारे गाँवों के कायाकल्प की योजना ? क्यों जगाये सपने बीटी बीज की तरह बाँझ सपने ? मर गये लोग। हमसे पूछते,हम बताते-बड़े नहीं, छोटे-छोटे सपने चाहिए गाँव को। हवाई नहीं, धरती के गाय नहीं, बकरी। फिर सबसे ऊपर दान नहीं। पानी दान वापस ले लो। हमें सिर्फ सिंचाई के लिए थोड़ा-सा पानी दे दो।"[12]

अमेरिका से 'बी.टी.' कपास का बीज आता है, पहली बार तो फसल बहुत अच्छी होती है, लेकिन दूसरी बार वह बीज काम नहीं करता है, इसी बात को लेखक फाँस उपन्यास में खुलासा करता है "पहले साल इसके कुछ फायदे हुए हों तो हुए हों, किसान चौंके, तब, जब दूसरी बार ये बीज जमे ही नहीं। उन्हें तो अभ्यास था एक साल के बीज से उत्पन्न बीज को दोबारा, तिबारा इस्तेमाल करने का ! वह हुआ नहीं। देसी बीज 7 रूपये किलो था, बी.टी. 930 रुपये प्रति किलो। पहले जो-जो वादे किये गये थे। सब खोखले साबित हुए। निराश, लुटा हुआ निरुपाय शेतकारी। यहाँ से शुरू होती है किसानों की आत्महत्याएं।"[13] फाँस में लेखक ने गाय का उदाहरण दिया है, शकुन कहती है प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह- "अरे यह मनमोहनी गाय है अम्मा प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने दिया, सो मनमोहनी गाय। बीस-बीस सेर दूध देने वाली। कायदे से खिलाओं तो एक मन।"[14] मनमोहन सिंह द्वारा दुधारू गायें दी जाती हैं, कर्ज पर, किसानों के पास खाने के लाले है, ये मनमोहनी गाये 20-30 सेर दूध देती है, लेकिन किसान इन्हें पाल नहीं पाते, यदि पाल भी लेते है। तो दूध कोई नहीं खरीदता है, इस तरह गाँव के धनी लोग किसानों से गायें औने-पौने दामों पर खरीद लेते है घाटा होता है किसान का और मजा मारते है, अन्य। लोग चर्चा करते हैं- "एक दम बुद्धू है सरकार। गाय बड़े-बड़े सेठों को देना चाहिए जो उसे खिला सकें, पिला सकें, जिला सकें,। हमारे लिए तो बकरी ही भली जो खुद चर के चली आती।"[15]

सामाजिक और राजनीतिक तौर से देखा जाय तो भारतीय किसानों के जीवन का यह जबरदस्त संघर्ष वास्तव में बहुत कम साहित्यिक कृतियों में या सभा-सम्मेलनों में व्यक्त हुआ है। जमीनी सच्चाई तो यह है कि कृषि के लिए बीज और खाद खरीदने वाले किसानों पर पुलिस ने इसलिए लाटियाँ चलाई हैं कि बीज और खाद सही दामों पर माँग रहे थे, सस्ते में नहीं जबकि व्यापारी उसे दुगने-तिगुने दामों में बेच रहे थे। देशी बनिये तो किसानों को लूटने में लगे ही है, विदेशी कम्पनियाँ भी इस काम में लगी है। और दुर्भाग्य से हमारे राजनेता और नीति-निर्माता किसानों की इस खुली लूट में विदेशी कम्पनियाँ की सहायता कर रहें है।

निष्कर्षत: यह देखा गया है कि कथाकार संजीव ने किसान जीवन का यथार्थ रूप प्रस्तुत करने की कोशिश किया है और उनके जिन्दगी की बारीकियों तक वे पहुंचाते हैं। वे जिन्दगी के बीच उतरते हैं। वातावरण में जो मूक, क्षीण आवाजें होती हैं, उसे पकड़ते हैं। उन आवाजों के पास बैठते हैं। उसे सुनते हैं। उसे सामने लाते हैं, जैसे, 'किसानों की मूक चीख। पूरे उपन्यास में किसान के बजाय उन्होंने 'शेतकारी' शब्द का प्रयोग किया है। मराठी में किसान को 'शेतकारी' कहा जाता है। किसान को अपनी जमीन से, बैलों से जो नाता होता है, वह भगवान जैसा होता है। अपने भगवान को कभी बेचना नहीं चाहता। आज उसे मजबूरन यह सब करना पड़ रहा है। उपन्यास में इसके अनेक सन्दर्भ आये हैं। उसे विवशतावश अपने भगवान के साथ-साथ अपने जीवन को भी बेचना पड़ रहा है। भिखारी और किसान में काफी अंतर नहीं रहा है। व्यापार नीतियों ने उसे भिखारी बना दिया है क्योंकि सरकार व्यापारियों की है और व्यापारी सरकार में है। मूलतः 'फाँस' उपन्यास अलग-अलग आतंक से आहत क्षत-विक्षत भारतीय किसान की आत्म पुकार है। मूक संवेदनाओं का अनसुना, उपेक्षित दर्द है अंचल, जनपद और गाँव की अंतरात्मा की आहटें है। किसानों के जीवन पर प्रहार करने वाली व्यवस्था की खोज-खबर है। अंतर्वेदनाओं का सैलाब है। भविष्य में यह पल किसानों के जीवन में न आये इसकी जमीनी सच्चाई, अर्थ ध्वनियों को विस्तारपूर्वक सुनने का यह उपन्यास एक रास्ता है। पराजय के काले ध्वज का सर्वनाश कैसा करना, उसका उपाय है। वेदना और संवेदना का द्वार इस उपन्यास ने खोला है। भूमण्डलीकरण, मिडिया क्रान्ति, बाजारवाद, विज्ञापन, विचारधारा का अन्तवाद, अतिवाद आदि से आदि से उपजे संकट से जूझने की तड़प उपन्यास में है। यह तड़प मेहनतकश की जिन्दगी की विपत्तियों का महाकाव्य है।

4.1. कृषि नीति-

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ की 70 प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर रहती है। कृषि मानव जीवन के गुजर-बसर करने की रीढ़ है। सन् 1966-76 की 'किसान नीति' ने भारतीय सन्दर्भ में नये-नये, किसानों के बीज, पानी, खाद, बिजली एवं किसानों से जुड़े मुद्दे का निजात किया है। यही वजह है कि कृषि नीति

बदलती गई और यह बाजारवाद में तबदील हो गई बाजारवाद का ही परिणाम है कि कृषि में लगातार ह्रास नजर आ रहा है, किसानों को उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। इसका परिणाम है कि संजीव का उपन्यास 'फाँस' किसान जीवन का वकालत करता है।

किसानों के लिए सरकार नीतियाँ तो बनाती है। लेकिन वो नीतियाँ केवल सरकारी फाइलों में ही बन्द पड़ी रहती है। उसका यथोचित क्रियान्वयन नहीं हो पाता जिसकी वजह से किसानों को उसका लाभ नहीं मिल पाता है। वे दिन-रात कड़ी मेहनत करके अन्न उगाता है, सबका पेट भरता है लेकिन स्वयं भूखे पेट सोने को अमादा है। सरकार की योजनाओं का लाभ इन्हें न मिल पाने के कारण वे आत्महत्या करने को विवश हो जाते हैं। 'फाँस' उपन्यास की शकुन कहती है कि- "इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है।"[16]

भारत गाँव में बसा है और गाँव की पहचान कृषक और कृषि है। सरकारी प्रयासों की नाकामी, मौसम की मार कर्ज का दबाव (वित्तीय समस्या) आधारभूत संरचना की कमी और फसलों के उचित दाम नहीं मिलने का नतीजा किसानों की आत्महत्या के रूप में सामने आ रहे हैं। ऐसे में जनता के इस वर्ग को चुनाव में लुभाने के लिए 'कर्जमाफी' की घोषणा विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा नीतियाँ बनाई जाती है। अर्थ व्यवस्था पर इसके सकारात्मक-नकारात्मक और दूरगामी परिणाम की चिंता बैद्विक जगत में चर्चा का विषय रहता है। विश्व बैंक के निर्देशन में भारत सरकार की यह नीति रही है कि किसी-न-किसी सामग्री के कर्ज में किसान को फँसाना है। सम्भवतः किसान और किसानी तो संकटग्रस्त हुए ही लेकिन नये महाजनों का गिरोह तेजी से विकसित हुआ। ये गिरोह ऊँचे दामों पर उधार में किसानों को बीज, खाद और पेस्टीसाइड मुहैया कराने लगे। खराब बीज और मिलावटी पेस्टीसाइड की शिकायतें सरकार के पास पहुंचने लगीं लेकिन सरकार के कानों पर जूं तक न रेंगी। "हमारे बिके हुए नेता, सरकार कहां से रोकती, कहां उलटे इसके प्रचार के लिए कमर कस ली।"[17]

किसानों की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर और 'कर्जमाफी' जैसे प्रावधानों के मध्य नीति आयोग ने 'स्ट्रेटजी' फॉर न्यू इंडिया @ 75 में किसानों की आय दोगुनी करने और साथ ही आधारभूत संरचना के विकास को शामिल किया है। सरकार का भी प्रयास है कि सन् 2022 तक किसानों की आय दोगुनी की जाए। कृषि राज्य का विषय है परन्तु केन्द्र द्वारा भी नीतियाँ बनाकर ग्रामीण भारत के समग्र विकास हेतु प्रयास किया जाता है। किसानों के कर्ज को माफ़ करने की देश में परंपरा पुरानी है। विजयेन्द्र ने एक अखबार दिखाकर कहा- मैं अपनी नहीं, खाद, नीति के विश्लेषक देवेन्द्र शर्मा की एक एक रपट पढ़ रहा हूँ। अमेरिका में 91 फीसदी कृषि आधारित परिवारों को घर चलाने के लिए आय के एक से अधिक स्रोतों का सहारा लेना पड़ता है। यह उस देश में हो रहा है, जहां खेती को अगले दस साल के लिए 962 अरब डॉलर की सब्सिडी का प्रावधान किया गया है। यूरोप में भी स्थिति इतनी ही खतरनाक है। यूरोप का सालाना बजट का 40 प्रतिशत खेती को देने के बाद भी वहाँ हर मिनट में एक किसान खेती छोड़ देता है। नेशनल फार्मर्स यूनियन के सर्वे में पता चला कि 70 से ज्यादा कृषि आधारित व्यवसाय मुनाफा कमा रहे हैं। लेकिन इस खाद, श्रृंखला में किसान ही हैं, जो घाटे में चल रहे हैं, किसान एक मरती हुई प्रजाति बनता जा रहा है, न्यूजवीक में माकर्स कुटनर कहते है- "बरसों से अमेरिका में किसान, आम आबादी की तुलना में ज्यादा आत्महत्या कर रहे हैं। ठीक आँकड़ा हासिल करना कठिन है, क्योंकि ज्यादातर मौतें दर्ज नहीं होतीं।"[18] एक रिपोर्ट के अनुसार चीन में हर साल मौत को गले लगाने वाले 2,80,000 ग्रामीण में 80 फीसदी भूमि अधिग्रहण के शिकार बने लोग होते हैं। भारत में 1995 के बाद से लगभग 3 लाख लोग आत्महत्या कर चुके हैं। भारत में भी अमेरिका की तरह ये मामले पूरी तरह दर्ज नहीं होते।

वर्ष 2008 में देशभर में 52,500 करोड़ रूपये को किसानों के कर्ज माफ़ किए गये थे इसके बाद कई राज्यों ने लगातार किसानों की कर्ज माफी की घोषणा की। कर्जमाफी का फायदा उन्हीं किसानों को मिलता है जिन्हों ने बैंक से कर्ज लिया है। बैंक उसी किसान को कर्ज देता है जिसकी खुद की जमीन है। सभी किसान बैंक से कर्ज नहीं ले सकते, क्योंकि भूमिहीन किसान बटाई या पट्टे पर जमीन लेकर खेती-किसानी करते हैं। एसे किसानों की देश में कितनी संख्या है इसकी अभी तक गणना नहीं की गई है। विजयेन्द्र बताता

है कि-"अमेरिका में कापूस के भाव 1994 से भी कम हैं पर वहाँ कोई किसान आत्महत्या नहीं करता। कारण, वहाँ कापूस उपजाने वाले शेतकारी लोगों को सरकार 22 हजार करोड़ रुपयों की सब्सिडी देती है।"[19] यही रहती है सरकार की नीतियाँ।

अधिकांश अमीर किसान बैंक से कर्ज लेते हैं लेकिन खुद खेती नहीं करते हैं। इन अमीर किसानों को ही कर्ज माफ़ी का सबसे ज्यादा फायदा मिल रहा है। बैंक से कर्ज लेने वाले किसानों की संख्या 46.2 प्रतिशत है। इसके अलावा किसान सेल्फ हेल्प ग्रुप अन्य स्रोतों दोस्त एवं रिश्तेदारों तथा महाजनों से कर्ज लेता है। सुनील ने कहा –"कर्ज मत लो।,चलो, नहीं लेते कर्ज। लेकिन पहले के लिये हुए कर्ज का होगा।"[20] 'नाबार्ड की वार्षिक रिपोर्ट 2016-17 के अनुसार मौजूदा समय में 50 प्रतिशत से भी कम किसानों को कर्जमाफी का लाभ मिल रहा है।' मौजूदा समय में किसान को वित्तीय मदद, फसलों की वाजिब कीमत, कृषि उपज का विपणन, सिंचाई, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा, पानी, सड़क आदि बुनियादी सुविधाओं से महरूम है। राज्य सरकारों को किसानों की बुनियादी समस्याओं के समाधान के लिए कोशिश करनी चाहिए।

किसानों की आत्महत्या को क्रेंद में रखकर लिखा गया उपन्यास 'फाँस' भारत के कृषि नीति के साथ-साथ पूरे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। इतना ही नहीं संजीव ने किसानों की दुर्गति के लिए जिम्मेवार उदारीकरण की नीतियों, कॉरपोरेट सेक्टरों की चालाकियों को भी बेपर्दा किया है। सही मायने में देखा जाय तो प्रेमचन्द के गोदान में किसानों को जहां सिर्फ सामाजिक शक्तियां ही नष्ट करती है, वही संजीव के 'फाँस' में किसानों को सामाजिक शक्तियों के साथ-साथ प्राकृतिक विपदाओं का भी कहर ढोना पड़ता है। साथ-ही-साथ दम लेती भूमंडलीकरण के आक्रामक दौर में कृषि विरोधी नीति किसानों की आत्महत्या की दहलीज पर पहुंचाकर ही दम लेती है।

भारत सरकार की कृषि नीति के प्रारम्भिक पैरे को यदि पढ़ा जाये तो यह किसानों के हित में मालूम होता है। नीति की शुरुआत इस प्रकार से है, 'कृषि ऐसी जीवन पद्धति और परम्परा है, जिसमें भारत के

लोगों के विचार दृष्टिकोण, संस्कृति और आर्थिक जीवन को सदियों से सँवारा है । अत: कृषि देश के नियोजित सामाजिक-आर्थिक विकास की सभी कार्यनीतियों का मूल है ।' वास्तविकता इसके विपरीत है । कृषि नीति किसानों के बजाय बड़े घरानों या अमेरिकी कम्पनियों के हितों का पोषण करती है । विश्व बैंक द्वारा संचालित भारत की यही नीति रही है कि किसी सामग्री के कर्ज में किसानों को फंसाना । कर्ज लेना किसान की नियति बन चुकी है । उपन्यास के पहले अध्याय में इस नकाब को उठाया गया है । शकुन कहती है कि – "इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है ।"[21] क्षण-क्षण एक के बाद एक आत्महत्याएं किसी प्रेतछाया की भांति हमारे वर्तमान, अतीत तथा भविष्य पर सवालिया निशान खड़ा करती है । कार्पोरेट सेक्टर की वास्तविकता को उपन्यास की पात्र छोटी (कलावती) उजागर करती है,- "कारपोरेट-सोशल रेसपोंबिलिती इन देशी-विदेशी सेठों की जिम्मेवारी । आपूर्ति उतनी ही होती है जितने में इसका ग्राहक बचा रहे । किसी को भी किसानों की आत्महत्या की फिकर नहीं । किसी को भी नहीं ।"[22]

सामाजिक रूप से देखा जाय तो भारतीय किसानों के सामने यह सबसे बड़ी समस्या है । किसान इस देश का नागरिक है । इस देश की नीति-निर्माण में देश के बजट में, इस देश के लिए बनने वाली योजनाओं में कृषि और कृषक को या तो नजरअंदाज किया जाता है या बहुत कम ध्यान दिया जाता है । किसानों के साथ यह व्यवहार देखकर यही लगता है कि नीति-निर्माण करने वाले लोग किसानों को इस देश के नागरिक मानते हैं या गुलाम । पिछले 68 सालों से देश में जो योजनाएं बनी, इससे तो यही लगता है कि किसानों को बस बंधुआ मजदूर घोषित करना बाकी है । बाकी कुछ कसर नहीं छोड़ी गयी ।

कीटनाशक दवाइयाँ बिक रही है । यह अचानक नहीं होता है । सरकारी नीति-निर्माण में असर डालकर यह कम्पनियाँ अपना स्वार्थ साधन करती है । उसके लिए कार्पोरेट लांबिग यह अच्छा शब्द प्रयुक्त किया जाता है । मीरा राडिया टेप केस में यह तथ्य सामने आये थे । उस सच्चाई को उपन्यासकार ने यह सवाल भी उठाया था कि अगर व्यापारी फैसले करने वाले हैं, तो सरकार जनता को मुर्ख क्यों बनाती है ? सन् 2002 में

भारत में बी.टी. कॉटन आया। सरकार ने उसकी हर सम्भव सहायता की। लेकिन जो झूठे दावे किये, उस पर सरकारी नियंत्रण आवश्यक था, जो नहीं हो रहा। कम्पनी ने भ्रामक प्रचार किया। किसानों की आय में कई गुणा वृद्धि हुई है। भारतीय किसानों की आय पहले से जरुर बढ़ी थी, लेकिन वे अब 1,200 से ऊपर वाला बीज खरीद रहे हैं और 8 से 10 रूपये किलो कपास चुनने को दे रहे हैं। अमेरिका में 1994 से कपास के भाव में कोई वृद्धि नहीं हुई यह प्रचारित किया गया, लेकिन यह बात छुपाई गयी कि अमेरिका में सरकार कपास उपजाने वाले किसानों को 22 हजार करोड़ रुपयों की सब्सिडी देती है हमारे देश में इसका उल्टा हुआ। कपास उत्पादन पर किसानों को सब्सिडी तो नहीं दी गयी। उसके विरुद्ध बीज महँगा किया गया है, खाद पर सब्सिडी हटाई गयी है। कीटनाशक कई गुना ज्यादा दामों पर बेचा जाता है। यह सरकारी नीति है, जिससे किसानों को संघर्ष करना पड़ रहा है। लेखक ने मंथन करते हुए कहा है कि- "इसीलिए डिस्पैरिटी मिटाओ, बीज बदलो, खाद बदलों, पशुधन जोड़ो, कम्पोस्ट लाओ, कीटनाशक बदलो, जो जहर फैला रहा है, माटी-पानी-खून में ..बाजार को अपने कब्जे में करो, को आपरेटिव, जोड़ो, कर्ज बंद करो, फिजूलखर्ची बंद करो ...।"[23]

किसानों के लिए सरकार योजनाएँ और नीतियाँ बनाती तो है लेकिन किसानों तक पहुंच पाना बहुत ही मुश्किल होती है जैसे ये कुछ योजानाएँ सरकार बनाती है जो इस प्रकार है –

1. प्रधानमन्त्री किसान सम्मान नीधि योजना

2.किसान पेंशन योजना, किसान मानधन योजना

3.फसल बीमा योजना

4. खेत तलाई अनुदान योजना

6. डिग्गी अनुदान योजना

7. जल हौज अनुदान योजना

8. कृषि यंत्र अनुदान योजना

9. परम्परागत कृषि अनुदान योजना

10.कांटेदार तारबंदी अनुदान योजना

11.किसान कलेवा योजना

12 राजीव गाँधी किसान साथी सहायता योजना

13 सावित्री बाई फुले महिला किसान सशक्तिकरण योजना

14 बिजली बिल अनुदान योजना

15 सरकारी जीवन सुरक्षा बीमा योजना

किसान हर देश का आधार स्तम्भ होते हैं। उन पर ही देश की आर्थिक व्यवस्था टिकी होती है। विश्व का आनन्द ऐश्वर्य और वैभव किसानों के कारण ही हम भोग पाते हैं। भारत की जनता का अन्नदाता पालनकर्ता एवं जीवन का आधार किसान ही है। अन्य देशों की तुलना में भारत में किसानों का अधिक महत्व है। वर्तमान में भारतीय किसानों की दशा अत्यंत दयनीय है। दुबला-पतला शरीर और फटे पुराने वस्त्र यह भारतीय किसानों की पहचान है। उनका खान-पान रुखा-सूखा और रहन-सहन सादा है। भारतीय किसानों का जीवन कठिनाइयों से भरा है। वह प्रात: काल उठकर हल जोतते हैं और हम सभी के लिए ठंडी, गर्मी, बरसात सहकर दिन-रात कड़ी मेहनत के बावजूद भी उनका जीवन सुख से परिपूर्ण नहीं है। उन्हें अपनी मेहनत का मूल्य चाहिए। उनके पास बीज, खाद, सिंचाई आदि के लिए पैसे नहीं होते हैं। वे सदैव कर्ज में डूबे रहते हैं। अत: उनकी स्थिति सुधारने के लिए सरकार को उनके लिए कुछ सफल प्रयास करना चाहिए। अगर किसान नहीं होगें तो हम नहीं रहेंगे। उनकी सुख-सुविधा खेती का ख्याल सरकार को रखना चाहिए तभी देश की प्रगति संभव है। वैश्विक नीति तीसरी दुनिया के देशों के स्थानीय उद्योगों को खत्म कर वहाँ के

लोगों को पूरी तरह से परावलम्बी बनाने की थी। यह नीति किसान को खेती छोड़ने के लिए बाध्य करने वाली थी।

इस औद्योगिक दृष्टि का अभाव भारत के किसानों में है। गोदान का होरी इसका प्रतीक है। युग बदल गया, स्थितियाँ बदल गयी। उभरते पूंजीवाद के कारण किसानों के जीवन में परिवर्तन शुरू हुए, इसका संकेत प्रेमचन्द ही दे रहे थे। पर 1991 के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया जब तेज हुई, तब कृषि जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आ गये। भारत के संसाधनों, खासकर जल-जंगल-जमीन और यहाँ की खनिज सम्पत्ति में रूचि रखने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने कृषि जीवन को उद्ध्वस्त कर दिया। भारत की कृषि नीति ने प्रभावित एवं नियंत्रित किया। अपने देश में किसानों के लिए कई योजनाएं मुहैया कराने वाले अमेरिका जैसे राष्ट्र ने अपने देश में किसानों के लिए एक नीति और भारत के किसानों के लिए दूसरी नीति चलायी। अपने देश में किसानों के लिए सब्सिडी उपलब्ध कराने वाले अमेरिका ने भारत को किसानों पर पाबन्दियाँ लाने के लिए बाध्य किया।

संजीव के 'फाँस' उपन्यास में भारतीय कृषि-नीति का उलंघन होता हुआ नजर आता है। उपन्यास में वर्णित किसानों को कृषि-नीति के आधार पर कृषि से संबंधित सामग्रियाँ उपलब्ध नहीं करवाई जाती है। इस उपन्यास के माध्यम से संजीव यह दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि भले ही सरकार कृषक के लिए अनेक नीतियाँ बनाकर उनकी सहायता करना चाहती है पर समाज में कुछ ऐसे लोग होते हैं जो किसान तक इस लाभ को पहुँचने ही नहीं देना चाहते। क्योंकि अधिकतर भारतीय किसान अनपढ़ एवं गरीब होते हैं, उन्हें इन नीतियों का निर्माण कैसे होता है, इससे क्या क्या लाभ मिल सकता है इत्यादि का ज्ञान नहीं होता है, जिसके चलते आज भी किसान समाज में कर्ज से जूझ रहा है और अंत में उपाय विहीन होकर आत्म हत्या कर लेता है। यह हमारे समाज के लिए अत्यंत ही बिडम्बना है कि जिसकी मेहनत के बदौलत हम आज भरपेट खाना खा पा रहे हैं पर उन्हें कर्ज के चलते अपना ही अनाज दूसरे को दे देना पड़ता है और स्वयं भूखे रहते हैं।

4.2. खेती के लिए यंत्रीकरण का दुष्प्रभाव-

भूमि को खोदकर अथवा जोतकर, बीज बोकर व्यवस्थित रूप से अनाज उत्पन्न करने की प्रक्रिया को खेती कहते हैं। वर्तमान बाजारवाद का औद्योगिकीकरण के प्रभाव से कृषि क्षेत्र के प्राय: सभी कार्य, कृषि यंत्रों से करना संभव हो गया है, जैसे–जुताई, बुवाई, सिंचाई, कटाई, मड़ाई एवं भंडारण आदि में कृषि यंत्र का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि यंत्र से उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों बढ़ती है। यंत्रीकरण से कम समय में अधिक कार्य कुशलता के साथ किये जा सकते हैं। लेकिन यह किसानों और मजदूरों के लिए बड़ी समस्या बन गई है। क्योंकि निम्नवर्ग के लोग मजूदरी मेहनत करके अपना परिवार पालते थे उसी से उनकी जीविका चलती थी लेकिन कृषि यंत्रो के आ जाने से किसानों और मजूदरों पर बहुत बड़ा दुष्प्रभाव पड़ने लगा है। पहले लोग स्वयं का खेत न होने पर दूसरों के खेतों में मजूदरी करके अपनी आजीविका पालते थे किन्तु इन यंत्रो ने उन्हें बेरोजगार कर दिया है।

पहले हमारे देश की खेती पशुओं पर निर्भर रहती थी। लेकिन अब किसान खेती के नए-नए तौर तरीके अपना रहे है। पहले निराई गुराई जैसे काम के लिए काफी मजदूर लगाने पड़ते थे। समय बदलते ही मजूदरों की जगह मशीनों ने ली और कृषक मशीन निर्माताओं, अनेक संस्थाएँ खेती की मशीन बनाने लगे, जिससे किसानों का काम आसान हुआ। एक तरह देखा जाय तो काम तो आसान ही हुआ लेकिन दूसरी तरफ देखा जाय तो बेरोजगारी बढ़ती गई। आज मजदूर वर्ग का किसान अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने में अस्मर्थ होता जा रहा है। क्योंकि उनको कहीं काम करने के लिए बुलाया नहीं जा रहा है। इससे उनकी आय नहीं हो पा रही है, वो अब घर बैठे रहते हैं। इस तरह कृषि यंत्रो के आ जाने से किसानों, दलितों, मजदूरों सब पर नुकसान हुआ। लेखक ने 'फाँस' उपन्यास में यह अंकन किया है कि- "1970 में भी 2 रुपये पुरुष, एक रुपये स्त्री,और आज मर्द को 200 से 250, वहीं औरत को भी ...तब स्कूल टीचर को मिलते थे 150 रुपये प्रति माह और आज मिलते हैं 16 हजार से तीस-चालीस हजार, पेंशन अलग से। सरकारी कर्मचारियों के लिए फिफ्थ और सिक्स्थ पे कमीशन और किसानों के लिए कुछ नहीं ! "[24]

जैसे-जैसे तकनीकी का विकास हुआ, किसानों का खेती में प्रयोग करनेवाला सामान मंहगा होता गया। खाद, बीज, कीटनाशक, महँगी दवाइयां, आधुनिक तकनीक उपकरणों ने किसानों को खेती के करीब लाने के बजाय दूर कर दिया, छोटे किसान आधुनिक तकनीक से खेती नहीं कर पाते हैं और इसका कारण यह होता है कि वे पिछड़ते जाते हैं, आर्थिक सामाजिक सभी स्तर पर 'फाँस' उपन्यास इसकी गहरी पड़ताल करता है।

भारत का किसान उपेक्षित एवं तिरस्कृत बन गया, इसकी ओर संकेत करते हुए संजीव लिखते हैं- "एक भारतीय किसान की तरह उपहास का केन्द्र, अपमानित, लांक्षित।"[25] कृषि के लिए सिंचाई मूलभत आवश्यकता है, लेकिन महाराष्ट्र में सिंचाई के नाम पर किसानों को फंसाया गया। अपनी बात बड़े सटीक शब्दों में व्यक्त करते हुए संजीव लिखते हैं- "जल हमारी प्राथमिक जरूरत है। सिंचाई के नाम पर हमें पानी नहीं, घोटाले मिले हैं।"[26] स्वतंत्रता के बाद काले अंग्रेजों ने जो किया वह विकास के नाम पर किया गया भ्रष्ट आचरण हैं। सरकारी नीतियों की बहुत बड़ी विडम्बना यह भी है कि किसान अगर आत्महत्या करता हैं तो यह आत्महत्या का पात्र है या अपात्र इन शब्दों में उलझती जाती है। मुम्बई में शराब पीकर मरने वाले सभी लोग या यू.पी. के गैंगवार में मरे लोग सरकारी सहायता के लिए पात्र हैं, बस पात्र नहीं है तो किसान। मरने के बाद भी उसे संघर्ष करना पड़ता है, अपनी आत्महत्या को सरकारी सहायता के लिए पात्र सिद्ध करने के लिए। किसान के जीवन की यही विडम्बना है। यहाँ सरकार बेईमान है, समाज बेईमान है, व्यापारी, अधिकारी तो हैं ही। यह सब बेईमान हो रहे हैं, क्योंकि किसान की जीवन-संस्कृति और व्यवयास मुसीबत में है। प्रकृति से वह मुसीबत में है।

भरतीय किसानों के पास अपनी जमीन से उपज निकालने के लिए दिमाग हैं, उनकी हाड़तोड़ मेहनत करने को तैयार है। आज जितने भी किसान मेहनत कर रहे हैं या परिस्थितियों से लड़ रहे हैं, उसका कारण यह है कि उनकी यह लड़ाई एक तरह कहे तो उनको कृषि यंत्रो के आ जाने से भी है। और दूसरी लड़ाई

संपूर्णता विपरीत परिस्थितियों के साथ है खेती करने लायक न प्राकृतिक महौल है न सरकारी नीतियाँ है और न ही मुश्किल तथा जरूरी क्षणों में पैसा का आधार हैं।

हर समय किसानों को खेती करने के लिए आवश्यक पैसों हेतु दूसरों के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं। उसका कारण है कि जिस पंरपरागत ढर्रे पर खेती की जा रही है, वहा बहुत अधिक लाभ कमाने के मौके नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर देखे तो कई उदाहरण सामने आ जाते हैं। वैसे किसान अगर लागत और नफे का तालमेल बिठा दे तो कब का खेती छोड़ चुका होता। खेती हमेशा घाटे का सौदा है। ज्वार, गेहूं, अरहर, सोयाबीन, कपास, चना, टमाटर, प्याज, विविध सब्जियां आदि उत्पादों का विचार करें तो इस प्रकार की खेती में किसानों का नुकसान हो रहा है। इसी कारण किसान लोन यानि कर्ज लेता है। संजीव कहते हैं कि- "धर्म के मूल्य उसे मरने से पहले ऋण उतार देने की ओर ढ़लते हैं, जब तक ऐसा नहीं होता, आत्मा पर बोझ बना रहता है। प्रलोभन और जिम्मेवारियां उसे एक ओर खींचती है, अभाव दूसरी ओर। धीरे-धीरे सहमते-सहमते अँधेरे में हाथ उठाये वह कर्ज के मकड़जाल में फंसता जाता हैं।"[27] उपर्युक्त स्थितियों को देखा जाय तो जैसे-जैसे तकनीकी का विकास हुआ है, किसानी का कार्य मँहगा होता गया है, संजीव ने 'फाँस' के भीतर विस्तार से लिखा हैं- "महँगे बीजों, खादों और कीटनाशकों की वजह से ज्यादातर किसानों को कर्ज लेना पड़ता हैं। सरकारी बैकों में खसरा-खतौनी, नकल दुरुस्ती समेत कई लफड़े कर्ज की राशि भी कम। फलत: ज्यादातर किसान वहाँ जाने से ही घबराते हैं और उन्हें ऋण एजेंसियों और गाँव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है। जो होता तो 10 प्रतिशत प्रतिमाह या उससे भी ज्यादा, पर वे यह नहीं पूछते थे कि किसलिए ले रहे हो, उनसे रिश्ता अंत तक आत्मीय बना रहता है। एक किसान को सिर्फ खेती, सिर्फ बीज, खाद कीटनाशक, सिंचाई नहीं जीवन और परिवार की अन्य जरूरते भी होती हैं जैसे बच्चे की शिक्षा, स्वास्थ्य, बेटी की शादी, ख़ुशी,गमी जैसी चीजों के कर्ज सरकार से नहीं मिलते। ऐसे हालत तक ले ही आये हैं क्यों हमारे हुक्मरान हमें यहाँ ? सारे राजनेता, सारी पार्टियों के राजनेता लगता है, दलाल हैं उन्हीं के।"[28] लेखक द्वारा प्रस्तुत वास्तव कितना भयानक है। ऐसा नहीं कि राजनेता और कृषि अर्थशास्त्री इन वास्तवों से

परिचित नहीं है, इसके कारण भी किसानों, मजदूरों और पिछड़े वर्ग के किसानों को दुष्प्रभाव पड़ता है, और नुकसान भोगना पड़ता है।

इस तरह अंत में कहा जा सकता है कि कृषि यंत्रो के आ जाने से किसानों को लाभ भी हुआ है और दूसरी तरफ देखा जाय तो जो निम्नवर्ग के किसान मजदूर दलित आदिवासी उन सबको नुकसान भोगना पड़ता है, क्योंकि उनकी रोजी-रोटी छीन ली गई है, इन कृषि यंत्रों के आ जाने से। एक ओर जहां खेती योग्य भूमि कम होती जा रही है वहीं खेती को लाभ का व्यवसाय बनाने के प्रयास तेजी से किए जा रहे हैं। 'फाँस' उपन्यास में भी किसान पर इन कृषि यंत्रों का प्रभाव का वास्तविक चित्रण देखने को मिलता है। इन यंत्रों के आ जाने से गरीब दर्जे के किसानों को अपना परिवार का पालन पोषण करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। उन्हें पहले कटाई, बौवाई से लेकर कृषि से सम्बंधित सभी कार्य में जो मजदूरी मिलता था वह सब इन यंत्रों के आ जाने से बंद होता जा रहा है।

4.3. बढ़ता बाजारवाद और मूल्यों में गिरावट का प्रभाव-

बाजारवाद उपभोक्ता और उपभोग संस्कृति का उपजित स्वरूप है। जिसमें व्यक्ति, समाज, देश-दुनिया आदि समाहित है। हिंदी साहित्य इसी का अहम हिस्सा हैं। ऐसे ही रचनाकारों में संजीव है। जिनका उपन्यास 'फाँस' बाजारवाद की बढ़ती स्थिति एवं उपभोक्तावाद की संस्कृति को रेखाकिंत करता है।

औद्योगिक और भौगोलिकरण जैसे विचारधाराओं ने बाजारवाद के स्वरूप और अर्थ को पूरी तरह से बदल दिया। उपनिवेशवाद के पहले बाजार का स्वरूप बहुत ही साधारण हुआ करता था। जिसका मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों के समान जरूरतों को उपलब्ध करना था। जिससें व्यक्ति का व्यकित्त्व और बाजार के बीच के समन्त दिखता था। परन्तु औद्योगिकरण ने व्यकित के व्यकित्त्व का हरण करके इसे भी एक सामान के रूप में तब्दील कर दिया है।

जब-जब सत्ता को कोई चुनौती देता हैं। तो सत्ता अपनी तमाम चालाकियों के तहत या तो उसे अपने में मिला लेती या उसे उपेक्षित कर देती है। महाराष्ट्र में शरद जोशी या उत्तर प्रदेश में महेंद्र सिंह टिकैत

इसके जीवंत उदाहरण हैं। शरद जोशी ने बहुत अच्छा नारा दिया था, देश-दुनिया में रहकर आये थे, अंग्रेजी जानते थे इसलिए उन्होंने कहा था- "बाजार और टेक्नोलॉजी तक किसानों की पहुँच हो।"[29] बहुत छोटे-छोटे उत्पादों की कीमत भी उसका उत्पादक तय करता है लेकिन कपास की कीमत मण्डियों में बैठे व्यापारी तय करते हैं। किसानों के पास अपनी फसल बेचने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। वे यातो मण्डी में अपना उत्पादन बहुत कम कीमत पर बेचे या घर में रखकर सड़ने दें। फसल को तैयार करने के लिए उसने जो कर्ज साहूकार और बैकों से लिया था, उसे चुकाने के लिए वह औने-पौने दाम पर बेचने को विवश होता है। किसान हमेशा कर्ज में रहता है, 'साहूकार और बैंक अधिकारियों की लगातार प्रताड़ना उसके आत्मा को धिक्कारती है, उसके जीवित होने को ललकारती है, उन स्थितियों में आत्महत्या के अलावा और कोई उपाय उसे दिखाई नहीं देता।

कर्ज के इस भयानक आतंक ने भारतीय किसानों का जीना मुश्किल कर दिया है। स्वाधीनता से पहले जमींदार और साहूकार दोनों लूटते थे लेकिन आजादी के बाद गाँव का बड़ा भूपति साहूकार बनकर अपने ही किसानों को लूट रहा है। न केवल जीते-जी बल्कि मरने के बाद भी वही सबसे पहला आदमी होता है जो मृतक के घर जाकर आत्महत्या को पात्र सिद्ध करने के लिए मिलने वाले सरकारी अनुदान में अपना हिस्सा तय करता है।

संजीव ने अपने उपन्यास 'फाँस' में इस समस्या की भयावहता पर लिखा है कि शेतकारी लोगों की गुहार सुनकर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और राहुल गाँधी आये थे- "1997 से 2006 तक यहाँ 15 हजार किसान आत्महत्या कर चुके थे। समूचे देश में यह संख्या ढाई लाख तक पहुंच गयी थी। विदर्भ के ग्यारह जिलों में ही तीस हजार। दिल्ली, मुम्बई और पता नहीं कहाँ-कहाँ से लोग आये। समितियां बनी। जाँच-पड़ताल हुई। सभी का कहना था कि विदर्भ कृषि का ज्वालामुखी है। सुप्त ज्वालामुखी। कर्ज उतारना तो दूर, किसानों की आमदनी ही इतनी कम है कि खेती में बने रहना मुमकिन नहीं।"[30] दिल्ली लौटकर प्रधानमन्त्री ने कहा कि- "कापूस उत्पादक किसान को बचाना है तो उसे राहत पैकज देना पड़ेगा।"[31] ठीक

2009 के चुनाव से पहले 72 हजार करोड़ रुपये की कर्ज माफ़ी की घोषणा हुई। यानी जो कर्ज लिये थे, वो माफ़। लेकिन कुछ गाँव वालों का मुँह लटक गया।

संजीव जानते हैं कि जो किसान अपनी पत्नी की बाली बेचकर तीसरी बार बीज बो रहा है, उसके लिए बीज का क्या महत्व है ? जैसे इस बार के बीज उनके लिए अन्तिम आशा की तरह है, भयंकर गरीबी में घर का सब जाता रहा लेकिन यह अन्तिम विश्वास है, जो उन्हें जीवित रखे हुए हैं। इस विश्वास की रक्षा करने की प्रार्थना छोटी अपने हाथों के बीजों से कहती है जो उसकी माँ के कान की बालियों से खरीदे गये हैं। बेटियाँ माँ के दुःख को अच्छी तरह से जानती हैं, गरीब किसान की पत्नी के पास अब बालियों के अलावा बचा ही क्या था, जिन्हें बेचकर एक और प्रयास करने की हिम्मत होती। अन्तिम तो कानों की बालियाँ थी, जिनसे ये बीज खरीदे गये थे। इसलिए गरीब और बेबस किसान और उसके पूरे परिवार की जो जिजीविषा इस चित्रण में देखने को मिलती है, वह अप्रतिम है। विदर्भ में सबसे अधिक किसान आत्महत्या करते हैं। पर क्यों करते हैं, इस प्रश्न पर विचार किया जाना जरूरी है। संजीव ने यथार्थ रूप से अंकन किया है कि-"शेत क्यों बंजर हो जाता है और क्यों बंजर हो जाता है आदमी का मन? इस मरण के खिलाफ उठकर खड़े होने की कोशिश में बार-बार लड़खड़ा कर क्यों गिरता है आदमी?"[32] विदर्भ में कोई बड़ा कारखाना नहीं है, रोजगार के और कोई साधन नहीं हैं, केवल खेती है और खेती भी प्रमुख रूप से कपास की। कहना न होगा कि सन् 2012 तक 2,84,649 किसानों ने आत्महत्या की, जिसमें 68 प्रतिशत कपास की खेती से जुड़े थे। जहाँ बहुयात में कपास होता है, वहाँ कपड़ा मिलें भी होनी चाहिए लेकिन विदर्भ इनसे वंचित है। सारा कपास मंडियों के माध्यम से बाहर जाता है।

इस तरह इस उपन्यास में संजीव ने बढ़ता बाजारबाद के चलते किसानों के फसल की कीमतों पर गिरावट का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। आज भी भारतीय किसान भगवान-भोरेसे पर पर खेती करता है। उसे उम्मीद रहता है कि उसका कार्य व्यर्थ नहीं जायेगा, उसे अनाज के उचित मूल्य मिलेंगे। पर कभी कभी बाढ़ या सुखा पर जाने से उसकी उम्मीदों पर पानी पड़ जाता है। फिर भी वह हार नहीं मानता फिर से कहीं न

कहीं से उधार लेकर बीज खरीद कर खेती करता है और अंत में जब वह अपनी फसल बेचने जाता है तो बढ़ते बाजारबाद के चलते उसे कम कीमत दिया जाता है। अगर इस कीमत पर गौर किया जाय तो यह देखा जाता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है। उसकी मेहनत का आधा हिस्सा भी उसे नहीं मिलता है।

4.4. किसान जीवन पर भूमंडलीकरण का प्रभाव-

भूमंडलीकरण दो शब्दों से मिलकर बना है – 'भू' और 'मंडलीकरण'। 'भू' का अर्थ होता है भूमि और 'मंडलीकरण' का अर्थ होता है - समाहित करना। इस प्रकार भूमंडलीकरण का अर्थ हुआ जब प्रत्येक देश अपनी देशों की सीमाओं को छोड़कर एक दूसरे का सहयोग करने के लिए एक छत के नीचे आते हैं उसे भूमंडलीकरण कहते हैं। भूमंडलीकरण का कृषि पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। भारत में 90 प्रतिशत कृषक छोटे एवं मध्यम वर्ग के अंतर्गत आते हैं। किसानों के पास सीमित पूँजी एवं कम आय होने के कारण वे कृषि यंत्रो का भरपूर उपयोग नहीं कर पाते हैं। 'हरित क्रांति' के परिणामस्वरूप जिन किसानों के पास पूँजी थी, उन किसानों को सबसे अधिक लाभ मिला लेकिन छोटे किसानों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भूमंडलीकरण के कारण कृषि उत्पादकता पर भी काफी विपरीत प्रभाव पड़ा। जैविक खादों का मंहगा होना, कीटनाशक दवाइयों का मंहगा होना, कृषि शोध में बाधा, जैविक विविधता में बाधा आदि के कारण कृषि की उत्पादकता एवं कृषि पद्धति पर बुरा प्रभाव पड़ा। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अतृप्त आकांक्षाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं। इन कम्पनियों के द्वारा ऐसे बीज उत्पादित किये जाते हैं जिनका दुबारा उपयोग नहीं किया जा सकता। लक्ष्य साफ़ है कि हर बार किसान को नये बीज खरीदने के लिए बाजार में आने पर बाध्य करना है।

'फाँस' उपन्यास भूमण्डलीकरण की रेशमी चादर को केंचुल की भांति उधेड़ता हुआ इसकी विद्रूपता को बेपर्दा करके गम्भीर बेचैनी से भरे सरोकार एवं प्रश्न सामने लाता है। पूँजी की सर्वग्रासी सत्ता ने जीवन के विविध पक्षों को व्यापार में बदला है। भूमण्डलीकृत व्यवस्था में पालित-पोषण विकास के अविवेकपूर्ण माडल ने सारे देश के किसानों को दलदल में फँसा दिया है। संजीव सिर्फ विदर्भ के किसानों की समस्या को ही उजागर नहीं करते वरन् यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि उस समस्या से पूरे देश का

किसान जूझ रहा है। जब अपने ही पेट पर लाले पड़े हों तो अधिक दूध देने वाली विदेशी गाय को क्या खिलाये-पिलाये। भूमंडलीकरण की देन ही यह है कि अपना नहीं दूसरे का अपनाओं। विदेशी बी.टी. काटन से परम्परागत देसी बीज नष्ट हो गये, विदेशी गाय आने से देसी नस्ल की गाय और बछड़े भी धीरे-धीरे गायब हो गये। "विदेशी बीज, विदेशी कर्ज, विदेशी गाय, विदेशी नीति, और यहाँ का सूखा किसान और सूखी धरती।"[33]

संजीव भूमंडलीकरण से उपजी त्रासदी के हर पहलू को रेखाकिंत करते हैं। हर कोने पर उसकी पैनी दृष्टि पहुंच पायी है। उनके पात्र भूमंडलीकरण की चुनौतियों से टकराते हैं, उसका सामना करते हैं। कुछ पात्र पस्त एवं परास्त होकर आत्महत्या को गले लगाते हैं। तो कुछ पात्रों में अदम्य जिजीविषा होती है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने वजूद का अहसास कराते हैं। इस दृष्टिकोण से शकुन, शिबू और शकुन की बेटी कलावती (छोटी) और सरस्वती, विजयेन्द्र सिन्धु ताई, अशोक, मल्लेश, दादाजी खोबरागड़े और खिलदंड नाना को भुलाया नहीं जा सकता जो बदलाव की आकांक्षा लिये संघर्ष जारी रखते हैं। जीवन के तमाम दुःख, संकट और असुविधाओं को झेलते हुए वह अपना जीवन शराब उन्मूलन में झोक देती है। उपन्यास में शुरू से लेकर अंत तक 'छोटी' अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। किसी बंधन में बंधकर अपने वजूद को खोना 'छोटी' को भाता नहीं है। घरवालों के ना चाहते हुए भी वह अशोक से मिलना-जुलना जारी रखती है तथा शादी होने के बाद ससुराल की पाबन्दियों को आत्मसात न कर पाने के कारण वहाँ से चली जाती है। अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत वह आधुनिक समय की स्वाभिमानी और शिक्षित लड़की है, तभी तो उसके प्रयासों से सिर्फ सात दिनों में बांसोड़ा ग्राम में बिजली आ जाती है जो आजादी के 65 सालों बाद तक नहीं आ पायी थी।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कृषि में बढ़ते हस्तक्षेप से किसान तबाह हो रहें हैं। ये कृषि उत्पादों से लेकर खाद, बीज कीटनाशकों और उत्पादन के तरीकों पर कब्जा कर लिया है। सरकार भी समर्थन-मूल्य उस अनुपात में नहीं बढ़ाती है, जिस अनुपात में बढ़ाया जाना चाहिए। कभी-कभी तो समर्थन मूल्य हमारे देश के

समर्थन-मूल्य से कई गुणा ज्यादा है। लेखक ने 'फाँस' उपन्यास में यह भी बताया है कि-"चीन और अमेरिका में हाई ब्रीडों की जगह देसी साधारण प्रजातियों पर जोर दिया जा रहा है। मोंसेंटो का प्रचार है कि हमारे किसानों को 40,000 करोड़ का लाभ हो रहा है। सच्चाई इसके उलट थी। हजारों करोड़ का फायदा इन कम्पनियों को और इनके स्लालों को हो रहा था। किसान तो मर रहे थे। हमारे कृषि मंत्री भी पार्लियामेंट में लाभ की बात करते हैं। अपने क्रान्तिवीर एक फिल्म स्टार ने यवतमाल में प्रचार किया। समझ में नहीं आता कि क्यों बन गये उन हत्यारों के दलाल हमारे अपने ही भाई लोग ! यह वही चेहरा है जो विश्वयुद्धों में घातक रासायनिक हथियार बनाता रहा।"[34] संजीव जी की अन्वेषण प्रवृत्ति अद्भुत है। उन्होंने हर बिन्दू पर अपनी खोजी दृष्टि डाली है। अन्नदाता आज आत्महंता बन रहा है और शासक वर्ग बेख़ौफ़ मनमाने ढंग से इन नीतियों को लागू करते जा रहा है।

संजीव का यह उपन्यास वास्तव में एक विशद पड़ताल है तथा एक गहन खोज है जो किसान जीवन की हर तह को खोलने में सक्षम है। साधारण किसान परिवार में सिर्फ मानवीय रिश्ते ही नहीं वरन् उस परिवार के पशु-पक्षी भी गहरे बंधन से जुड़े होते हैं। पशु को भी अपने मालिक की हर वस्तुस्थिति का भान होता है। जैसे - "आँखों से आँसू बहे जा रहे थे। परिवार का वह सदस्य अपनी असहायता पर आँसू बहाते-बहाते, भूल-चूक के लिए क्षमा मांगते सदा के लिए विदा ले रहा था, 'माफ़ करना, मुझसे जितना बन पड़ा, किया, अब नहीं ..।"[35] मूक वाणी की पीड़ा को भी उपन्यासकार ने जीवंत बना दिया है।

भारत की 70 फीसदी आबादी कृषि पर निर्भर है। उद्योगों का आधार भी भारतीय कृषि है। उद्योगों के लिए कच्चा माल तैयार करने से लेकर शहरों के लिए भेजा जाने वाला खाद पदार्थ सब कृषि पर निर्भर है। बावजूद इसके खेती करने वाले किसान फाकाकशी का शिकार है। आज कोई स्वेच्छा से खेती नहीं करना चाहता। विकल्पहीनता की स्थिति में ही वह इस मार्ग को चुनता है। तभी तो अभी तक लगभग 80 लाख किसानों ने खेती छोड़ दी है। विकल्पहीन किसानों की अब भी कोई कमी नहीं है जिनके पास खेती के

सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं है। बहुत ऐसे किसान है जिनके लिए किसानी मात्र जीविका का साधन न होकर एक लाइफ-स्टाईल है।

शिबू और उसका परिवार राणा प्रताप की जिद को आदर्श मानकर बैंक का कर्ज चुकाने की जद्दोजहद में परिवार में न कोई उत्सव, न ढंग का खाना, पहनना बस कर्ज चुकाने की जिद पर अड़ा रहता है। कर्ज गले की 'फाँस' बन गया है। कर्ज ने मन की इच्छा, आकांक्षा, सपने सबको चुरा लिया है। अपने सीमित साधनों में लड़ता, पिसता, व्यवस्था से लोहा लेता शिबू पत्नी शकुन और दो बेटियों को छोड़ गले में फंदा लगा लेता है। यहाँ उमाशंकर चौधरी की कविता उदाहरण के रूप रखा गया है -

"वह बूढ़ा किसान

जिसके खेत में पड़ चुका है सूखा

जिसके जवान बेटे ने अपने पीछे

पत्नी और दो बेटियों को छोड़ लगा दिया है

गले से फंदा।"[36]

संजीव प्रश्न उठाते हैं, 'जो तिल-तिल मरता है, क्या वह पात्र नहीं? बाप के नाम पर जमीन पर बेटा मरता है क्या वह पात्र नहीं? आत्महत्या में पात्र-अपात्र का फर्क करना सरकार या अधिकारियों की बेईमानी और बदनीयती बताती है। भारतीय कृषक को तबाह करने वालों की लालसाएँ अनंत हैं। उसकी अतृप्त भूख की पूर्ति दूसरों को मारने के बाद ही सम्भव हो पाती है।

इस तरह देखा जाता है कि इस उपन्यास में भूमंडलीकरण का प्रभाव जगह जगह पर पड़ा है। इस उपन्यास में जितने भी किसानों का जिक्र किया गया है वे अधिकतर छोटे किसान है। इनके पास खेती करने के लिए पूंजी नहीं है और न ही ये खेती व्यवसाय करने के लिए कर रहे हैं। खेतीबारी से बस किसी भी प्रकार

से अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण हो जाय यही इन किसानों का उद्देश है। पर देश में इस भूमंडलीकरण के प्रभाव से इन छोटे किसानों की स्थिति दयनीय हो रही है।

4.5. किसान-आत्महत्या-

संजीव का 'फाँस' उपन्यास इक्कीसवीं सदी के महाराष्ट्र के आत्महत्या ग्रस्त किसानों की शोकात्मगाथा है। संजीव ने इसे एक ओर समस्याग्रस्त के दायरे में चित्रित किया है, तो दूसरी ओर खाद, बीज, पानी, बिजली न मिल पाने के कारण भारत के अनेकों किसान आत्महत्या के शिकार होते जा रहे हैं। इन किसानों को सरकार भी अनदेखा कर रही है। किसानों को सही मूल्य न मिल पाने के कारण किसान के जीवन में तरह-तरह के परेशानी आती है। जिसके चलते किसान आत्महत्या कर रहा है। भारतीय किसानों के गले में फाँसी का फंदा लटक चुका है, भारतीय किसान जहर खाकर मौत को गले लगा रहे हैं, भारतीय किसान आग में जलकर दर्दनाक मौत पा रहे हैं। कुल मिलाकर भारतीय किसानों को मौत की ओर धकेला जा रहा है। इसके कारणों को संजीव ने 'फाँस' उपन्यास के भीतर खंगालने की कोशिश की है। उन्होंने उपन्यास के भीतर सरकार, प्रशासन, नेता, सेवक, बैंक कर्मचारी और किसानों पर भी कई सवाल उठाये हैं। प्रकृति के साथ हमें समझौता करना है, वह हमारे हिसाब से चलेगी नहीं। अत: उसके अनुकूल खेती से जुड़े निर्णय भारतीय किसान, प्रशासन और सरकार को लेने हैं, परन्तु हमारे देश में इस पर कभी गम्भीरता से सोचा नहीं गया। किसी भी काम की सफलता के लिए उचित योजना और नीतियों की जरूरत होती है, इसकी कमी के कारण बने-बनाये कार्य भी बिगड़ जाते हैं। खेती, उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, खेल और तमाम क्षेत्रों के निर्णय, योजना और नीतियों से आसमान छूते अनेक उदाहरण हमारे आसपास उपलब्ध हैं। परम्परागत ढर्रे और आम-साधारण दृष्टिकोण को त्यागकर किसानी को गम्भीरता से देखना पड़ेगा। तभी खेती प्रगति-पथ पर आयेगी और किसान को आत्महत्या करने से रोका जायेगा। संजीव ने 'फाँस' में नीतिगत गलतियों पर सीधे उँगली रखी है और यह गलतियाँ किसानों को कैसे तबाह कर रही है, इसका ब्यौरा इस उपन्यास में दिया है। किसानों के प्रति संजीव कहते हैं कि- "बल्कि मरना एक मुक्ति है और जीना

एक बंधन। आये दिन तो आत्महत्या की खबरें सुनते रहते हैं। जिधर देखो उधर, कोई पेड़ की डाल पर लटका पड़ा है, कोई कुएँ में गिरा पड़ा है तो कोई कीटनाशक खाकर मुँह से झाग फेंक रहा है।"[37]

संजीव ने 'फाँस' के भीतर वर्धा में चल रहे एक सेमिनार की लम्बी चर्चा की है जिसमें किसानों की मुश्किलों, आत्महत्याओं, सिंचाई, पर चर्चा की गयी है। उसमें एक टीचर ने कुछ निष्कषों को सामने रखा है। "आत्महत्या, ख़ुदकुशी, सुसाइड ! सिर्फ इस्केप नहीं है, प्रतिवाद भी है, अन्तिम के विरुद्ध चीख है, मौन चीख। साइलेंट क्राइ! साने गुरु जी कभी बालों में तेल-कंघी न करते। महात्मा गाँधी की हत्या के बाद जब उन्हें पता चला कि गाँधी जी को गोली मारने वाला व्यक्ति एक मराठी है तो उन्होंनें बालों में तेल लगाया, कंधी की ओर आत्महत्या की। मैं प्रायश्चित कर रहा हूँ उन पापों के लिए जो हमने भले न किये हों, मगर हत्यारे से कहीं न कहीं जुड़ता है हमारा मन।...आत्महत्या महज कायरता नहीं, भाव-प्रवणता का उदात्त मुहूर्त है, पश्चात्ताप और विर्वेद की आग में मानवता का झुलसता हुआ परचम।"[38] 'फाँस' उपन्यास का चाहे सुनील हों, शिबू या आशा वानखड़े, 'ये लोग कर्ज के साथ-साथ फसल की बर्बादी यानी गहरी आर्थिक मार की वजह से आत्महत्या करतें हैं। विजयेन्द्र आत्महत्या की साइकी का गहन मंथन करता है। खेती, बीज, खाद, कीटनाशक, सिंचाई के साथ-साथ ही बच्चे की शिक्षा, स्वास्थ्य, बेटी की शादी, ख़ुशी, गम आदि चीजों और अवसरों के लिए सरकारी बैंकों के बजाय एजेंसियों और गाँव के साहुकारों से कर्ज लेने की विवशता और जमीन की गुणवत्ता, सिंचाई की प्रकृति और पैदावार से कोई मतलब न रखने वाली कार्पोरेट मुनाफे के लिए बनायी गयी नीतियाँ और योजनाएं, 'इन सबको वह किसानों को आत्महत्या की ओर धकेलने वाली वजह मानता है। विजयेन्द्र कहता है कि- "लेकिन बैंक का पहले का ऋण अदा करने में ही तो तबाह हुआ यह परिवार।"[39] और ये सभी परिवार बने आत्महत्या का शिकार एक के बाद एक ने कर ली आत्महत्या।

'फाँस' किसानों की आत्महत्याओं के भयावह दृश्य दिखाकर, समाप्त नहीं होता बल्कि यह खेती-किसानी और उससे जुड़े समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक पहलुओं का क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त

फसलों की विभिन्न किस्मों का, खेती की विधियों का, प्रयुक्त बीजों का, कीटनाशकों के प्रयोग आदि का गहन विश्लेषण करते हुए किसानों की समस्याओं के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक कारणों की पड़ताल भी करता है और समाधान भी खोजता है और यही कारण है कि उपन्यास दो भागों में बंटा दिखाई देता है। पहला किसानों के दुःख-दर्द, उनके संघर्षों, असफलताओं और उनकी आत्महत्याओं की केस स्टडी की तरह सामने आता है जो समस्याओं के कारणों को शिनाख्त करता है जिससे वह विदर्भ से शुरू होकर पूरे देश के किसानों की समस्याओं को समेटता हुआ उन सबकी करुणगाथा बनकर उभरता है। वहीं दूसरी हिस्सा वह है जो मृतकों के जाने के बाद समय और समस्याओं से जूझने के लिए बचे रह गये हैं और यह समझ गये हैं कि जान देने से कुछ बदलने वाला नहीं है, बदलना है तो जीना होगा, लड़ना होगा। सुनील का बेटा विजयेन्द्र, शिबू और शकुन की बेटी कलावती (छोटी), बड़ी बेटी सरस्वती, खुद शकुन, सिन्धु ताई, कलावती का बचपन का साथी अशोक,मंगल मिशन पर जाने वाला मल्लेश, इन सबको एकसूत्र में पिरोने वाला ये सभी आत्महत्या करते किसान है। लेखक कहता है कि- "सुसाइड करने वाले ज्यादातर कुनबी हैं-मराठा।"[40] आदिवासी किसान कम ही आत्महत्या करते हैं।

निष्कर्षत: हम देख सकते हैं कि किस तरह 'फाँस' उपन्यास का किसान शिबू हो या सुनील हो या मोहन बाघमारे हो, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, यातानाएँ झेल रहे हैं, बैंक के कर्ज से दबे रहते हैं। और उबर नहीं पाते। शिबू अपनी पत्नी का जेवर बेचकर बीज लाता है, और अपने खेतों में बोता है वो भी नपुंसक निकलता है। इस तरह किसान जीवन का यथार्थ सामने आता है। कृषि नीति भी किसानों के ज्यादा सही शाबित नहीं होती सरकार केवल नीतियाँ बनाकर फाइल तक सीमित रखती है। किसानों तक नहीं पहुंच पाता, ये भी नीतियाँ किसान को झेलना पड़ता है। खेती के लिए यंत्रीकरण आ जाने से किसान का काम आसान तो हुआ है लेकिन दूसरी तरफ देखा जाय तो किसान बेरोजगार भी हुए हैं, किसानों की मजदूरी मशीनों ने छीन लिया है, किसान को कभी भी अपने वस्तु का मूल्य तय करने को नहीं मिलता। वो मेहनत करता है, अनाज उगाता है, लेकिन बाजार में जब बेचने जाता है तो वहाँ सेठ, साहूकार, दलाल, ठेकेदार, नेता, अपनी मनमानी करते हैं और खुद मूल्य तय करते हैं। इसके चलते भी किसान आत्महत्या करता है।

भूमण्डलीकरण के वजह से विदेशी बीज, विदेशी खाद, विदेशी गाय, थोपा जा रहा है। देशी चीजें लुप्त होती जा रही है। किसान आत्महत्या का सिलसिला थम नहीं रहा है। भारत के अनेकों किसानों ने आत्महत्या की है, कभी बैंक के कर्ज के कारण, कभी प्राकृतिक आपदाओं के कारण, कभी सरकारी भष्ट नेताओं के कारण, तो कभी गरीबी के कारण, प्रतिदिन भारत का किसान तिल-तिल मर रहा है।

सन्दर्भ-

1. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचंद गुप्त, पृ. सं.-23

2. संजीव, फाँस, पृ. सं. -63

3. संजीव, फाँस, पृ. सं. -15

4. वही, फ्लैप मैटर से

5. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 186

6. वही, पृ. सं.-17

7. प्रो. संजय नवले, किसान-आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, पृ. सं. -105

8. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 36

9.वही, पृ. सं.-17

10.प्रो. संजय नवले, किसान-आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, पृ. सं.- 99

11. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 108

12.वही, पृ. सं.-72

13.वही, पृ. सं.-201

14.वही, पृ. सं. -67

15. वही, पृ. सं.-71

16.वही, पृ. सं. -15

17.वही, पृ. सं.-199

18.वही, पृ. सं. -197

19. वही, पृ. सं. -130

20 .वही, पृ. सं.- 25

21. वही, पृ. सं. -15

22.वही, पृ. सं. -15

23.वही, पृ. सं. -186

24.वही, पृ. सं.-159

25.वही, पृ. सं. -113

26.वही, पृ. सं.-250

27.वही, पृ. सं.- 110

28.वही पृ. सं. -110-111

29.प्रो. संजय नवले, किसान-आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, पृ. सं.-20

30.संजीव, फाँस, पृ. सं.-66

31. वही, पृ. सं.-79

32.वही, पृ. सं.-73

33.वही, पृ. सं.-69

34.वही, पृ. सं.-201-202

35.वही, पृ. सं.-17

36. प्रो. संजय नवले, किसान-आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, पृ. सं.- 202

37. संजीव, फाँस,पृ. सं.- 43

38.वही, पृ. सं.- 197

39. वही, पृ. सं.- 107

40. वही, पृ. सं.- 71

पंचम अध्याय

'फाँस' उपन्यास की भाषा-शैली

हिन्दी-मराठी भाषा के मिश्रण से बुना गया संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास अपनी ही भाषा शैली का अनूठा उपन्यास है, जो एक बृहत्तर समस्या को लक्षित करता है। साहित्य में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा ही है। भाषा-शैली के अलावा कोई भी कथा साहित्य का सारा घटनाक्रम अधूरा लगता है। भाषा के संबंध में डॉ. श्यामसुन्दर दास जी का विचार है कि –"भाषा ऐसे सार्थक शब्द समूहों का नाम है, जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है। अतएव भाषा का मूल आधार शब्द है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि जीवन के अनेक अनुभवों, प्रसंगों एवं घटनाओं का अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही है। संजीव के उपन्यासों में अवधी, भोजपुरी, बंगाली, आदिवासी, संथाली, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषा एवं बोलियों का प्रयोग परिलक्षित होता है।

शैली किसी व्यक्ति के ह्दय के भावों को अभिव्यक्त करने का सुंदर तथा सुगम तरीका है। किसी भी रचनाकार अथवा मनुष्य की पहचान उसकी भाषा पर निर्भर करती है। शैली लेखक का अभिन्न अंग है। शैली की अपनी विशेषताएँ होती है, जो उपन्यास में रोमांस बनाए रखता है। भाषा विचारों एवं भावनाओं को प्रकट करने का माध्यम है और शैली उन विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त करने की पद्धति है। इस तरह कथा-साहित्य में शिल्प-विधान को गरिमामय बनाने में भाषा-शैली का विशेष स्थान होता है।

5.1. भाषा-

किसी उपन्यास की भाषा उसके कथानक का प्राण तत्व होती है। औपन्यासिक संरचना को यथार्थवादी स्वर प्रदान करने में भाषा की सरलता और अर्थबोध के कारण ही कोई भी पाठक कृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर पाता है। यह भाषा की ताकत ही है जिसके द्वारा पाठक किसी भी पात्र व घटना के साथ जुड़ जाता है।

संजीव शिल्प के सन्दर्भ में प्रयोगधर्मी रहे हैं। संजीव के कथासाहित्य का शिल्प दो उद्देश्यों से निर्मित होता रहा है। उनका मानना है कि प्रकृति के जैसे रंग हैं, रूप, रस, गंध और ध्वनियाँ हैं, वैसी ताजगी रचनाओं में क्यों नहीं आती ? अर्थात यथार्थ को जीवंत और विश्वसनीय तरीके से पेश करने का उद्देश्य है और दूसरा कहानी को प्रभावशाली तरीके से पाठकों तक संप्रेषित करना या उसमें चुंबकीय आकर्षण पैदा करने का उद्देश्य। एक तरह से भाषा और शिल्प के चमत्कारों के सहारे प्रगति विरोधी, आत्मक्रेन्द्रित और समाज विरोधी रचनात्मक प्रवृत्तियों के प्रचार-प्रसार के विरुद्ध संजीव भाषा और शिल्प को भी हथियार बनाकर जनवादी कहानी के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों का सामना करते हैं। उन्होंने कथा-साहित्य को प्रभावशाली बनाने के लिए नए-पुराने, प्रचलित-अप्रचलित सारी शिल्पगत पद्धतियों का उपयोग किया है।

भाषा ही भावात्मक अभिव्यंजना का माध्यम है। रचना में भाषा का आकर्षक, प्रभावी तथा अर्थ सक्षम होना जरूरी है। भाषा कथा-विषय के अनुकूल होगी तो रचना में कलात्मकता आएगी। रचनाकार अपनी अनुभूतियों को उचित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए भाषा, शिल्प तथा शैली में नए प्रयोग करता है। तात्पर्य यह है कि भाषा विषय के अनुकूल, सरल प्रभावी, अलंकारों तथा मुहावरों से युक्त होगी, तब भाषा सौन्दर्ययुक्त बनेगी। वस्तुतः संजीव श्रमसाध्य शोधकर्ता हैं। अछूते क्षेत्रों का अवगाहन करने वाले संजीव के कथा-साहित्य में भाषा का जीवंत रूप मिलता है। भाषा-शैली की अलग अलग विशेषताएँ होती हैं जिसमें पात्रानुकूल भाषा, परिवेश की जीवंत उपस्थिति, कथ्य के अनुरूप शैली, भाषा सौन्दर्य के विविध उपकरण, सहज, सरल मुहावरेदार और भावप्रवण भाषा शैली परिलक्षित होती है। इस उपन्यास में मुख्यरूप से कथ्यगत भाषा और काव्यगत भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसका वर्णन निम्नलिखित है।

5.1.1. कथ्यगत भाषा-

कथ्यगत भाषा वह भाषा है, जो कथा के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत किया जाता है। संजीव ने इस उपन्यासों में कथ्यगत भाषा का प्रयोग किया है। संजीव 'फाँस' उपन्यास में शिबू और शकुन की कथा समाज और सरकार को सुनाते हैं कि किस तरह शिबू को खाद, पानी, बिजली न मिलने पर और

बैंक का कर्ज न उतार पाने की पीड़ा से अंत में वह आत्महत्या करता है। शुभा, अशोक और कलावती की कथा में बौद्ध धर्म अपनाने की कथा है, जैसे- कलावती की माँ शकुन कहती है कि बौद्ध धर्म अपनाने से शादी विवाह में कम खर्चा लगेगा और बेटियों का शादी-विवाह सही ढंग से हो जायेगा। 'जगंल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में साधु द्वारा मदनपुर माई की कथा डाकू काली को सुनाना। बेटिया महाराज की कथा इब्राहिम चाचा द्वारा बेगम को मुगलों ने गढ़वाल पर हमले की कथा सुनाना, 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में सुदीप्त द्वारा बजल बटकुच की सुनाई कथा, 'किसनगढ़ के अहेरी' उपन्यास में चाचा द्वारा हिन्दू और मुसलमान दोनों कौम की कथा सुनाना, आदि।

संजीव ने 'फाँस' में अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों का अच्छी मात्रा में प्रयोग किया है। अंग्रेजी शब्द और कुछ वाक्य तो अब भारतीय लोगों में बड़े सहज होकर बस गये हैं, इसलिए किसी भी कथानक में उनके प्रयोग को लेकर पाठकों और समीक्षकों को कोई आपत्ति नहीं होती, उल्टे इस तरह के प्रयोग अब कथानक और संवाद की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हो रहे हैं। इस उपन्यास में कई जगह ऐसे शब्द और वाक्य प्रयुक्त हुए हैं और वे शब्द इस उपन्यास को प्रभावी भी निर्माण करते हैं। लेकिन कुछ जगह वे बिल्कुल भी ठीक नहीं लगते, जैसे स्कूल में आठवीं-नौवीं कक्षा में मराठी माध्यम से पढ़ने वाली कलावती के मुँह से "कॉर्पोरेट सोशल, रेसपांसिबिलीटी इन देशी-विदेशी सेठों की जिम्मेवारी है या आपूर्ति उतनी ही होती है, जितने में इसका ग्राहक बचा रहे।"[2] कला के द्वारा अपने पिता के लिए 'टच मी नाट' यह संकल्पना, और बैलबंडी होने वाले नाना द्वारा 'पानी की क्राइसिस है' या यह 'तुम्हें डिस्टर्ब नहीं किया' यह संवाद उन पात्रों की शैक्षिक और व्यावसायिक योग्यता देखते हुए ठीक नहीं लगते।

संजीव ने इस उपन्यास में बड़ी उदारता से और शायद कथानक की वास्तविकता को अधिक प्रभाव बनाने के लिए मराठी शब्दों के अच्छी मात्रा में प्रयोग किये हैं। शेतकारी, नवरा, बायको, मुलगियाँ, वासरू, ऊस, बैलबंडी, लुगडं, गुढी पाडवा, पोला, आजोबा, जावई, माझा, रणरणती आदि शब्दों के बड़े सुंदर प्रयोग संजीव ने किये हैं। यह मराठी भाषा के लिए बहुत ही अच्छी बात है। यह करते हुए कुछ दोष भी आ

चुके हैं, जैसे तुअर का अर्थ मक्का बताया गया है जो अरहर है, आहेस की जगह ऊहेस, समजल की जगह समझाला, हरण की जगह हरड लिखा गया है। मुलगियों की जगह भी मुगलिया लिखा गया है जो शायद उत्तर भारत में अधिक चलताऊ शब्द होने से टाइप सेटर्स द्वारा हुआ होगा। एक जगह पर स्थान दोष भी आ चुका है। नासिक को मराठवाड़ा में दिखाया गया है, जो पश्चिम महाराष्ट्र में आता है। जो ऊपर शब्द दिये गये है उसका अर्थ हिंदी में उल्लेख किया गया है जैसे-

शेतकारी – किसान

बायको - पत्नी

नवरा - पति

तूअर – मक्का

वासरू – बछड़ा

वडील – पिता

मुलगी – बेटी, आदि शब्दों प्रयोग किया गया है।

एक सशक्त कथानक, समकालीन ज्वलनशील समस्या, उस समस्या से त्रस्त लोगों के बीच रहकर जाना गया उनका जीवन, जबरदस्त प्रभावी संवाद और सुंदर पात्रानुकूल भाषा एवं प्रभावी वर्णन-शैली से यह उपन्यास एक प्रभावी उपन्यास बना है। किसानों का जीवन तो वैसे सदियों से त्रस्त जीवन रहा है। और उन्हें वाणी देने का काम बहुत लोगों ने किया है। आज भी किसान शैक्षिक एवं साहित्यिक दृष्टि से इतना कमजोर है कि वह अपनी समस्या किसी मंच पर प्रभाव भाषा और शैली या कथानक में नहीं कह सकता। हमारे देश में जाति, धर्म या लिंग पर आन्दोलन या साहित्यिक विमर्श तो बनते हैं, लेकिन कृषि जैसे व्यवसाय पर कोई साहित्यिक विमर्श नहीं बन पाता। किसानों की आवाज आज भी आधी रात में सुनी किसी भयानक चीख को नजरअंदाज करने जैसी या जानबूझकर जल्द-से-जल्द भूलने की कोशिश जैसी भूली जाती है,

नजरअंदाज की जाती, अनसुनी की जाती है। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार संजीव द्वारा उस चीख की दशा ढूँढ़ने का प्रयास निश्चय ही महान है।

इस प्रकार देखा जाता है कि संजीव ने इस उपन्यास में कथ्यगत भाषा का प्रयोग करते हुए पात्र के अनुकूल शब्द चयन किया है। इस उपन्यास में हिंदी के साथ साथ अंग्रेजी, उर्दू, मराठी आदि भाषाओं के अनेक शब्दों को पात्र के अनुकूल प्रयोग करके उपन्यास को सफल बनाया है।

5.1.2. काव्यगत भाषा-

संजीव के उपन्यासों में काव्यगत भाषा का प्रयोग हुआ है। समयानुकूल गीत एवं लोकगीतों का भी प्रयोग उनके उपन्यासों में परिलक्षित होता है। 'फाँस' उपन्यास में शिबू समाज में स्थित बुराई, अज्ञान, अंधश्रद्धा, रीति-रिवाज और रुढ़ी-परंपराओं पर काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है। संजीव ने इस उपन्यास में देशी भाषा के माध्यम से जगह जगह पर गीत एवं कविता का प्रयोग किये हैं। महाराष्ट्र में मानवीयता का अलख जगाने वाले सुधारकों के कार्य को इसमें प्रस्तुत किया है। इसमें दादाजी खोबरागडे, देवाजी तोपा आदि स्वयं पात्र बनकर उपस्थित हैं। शिवाजी महाराज, बाबा साहेब आम्बेडकर, शाहू महाराज, संत गाडगे बाबा, अन्ना हजारे, पोपट पवार, सिन्धु ताई सपकोल आदि के कार्य का भी यथाप्रसंग उल्लेख आया है। संजीव के उपन्यास यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास में उनकी दृष्टि स्माजशास्त्रीय पायी जाती है। उपन्यास-कला को उन्होंने एक नये ढंग से प्रस्तुत किया है। बशर्ते संजीव के उपन्यास को समझने में हिंदी समीक्षा चूक गयी है। दरअसल उनके उपन्यास एक नयी दृष्टि से समीक्षा की माँग करता है। समकालीन दौर में जो उपन्यास लेखन होता आया है, उससे संजीव का उपन्यास-लेखन अलग है। उनके उपन्यास न रंजन करते हैं, न कलात्मकता बल्कि पाठकों को उस समस्या पर आत्मचिन्तन करने को प्रवृत्त करते हैं। यही उनके उपन्यासों की सामर्थ्य है। उनके उपन्यास में जो नहीं है उसे खोजने की बजाय जो है, वह उल्लेखनीय है।

उपन्यास अथवा किसी भी साहित्यिक रचना में रचनाकार के सम्मुख एक बड़ी चुनौती होती है कि वह पात्र की भाषा और संवाद के लिए कैसे शब्दों का चयन करे ? क्योंकि कथा भले ही सत्य घटना पर आधारित हो अथवा काल्पनिक उसके पात्रों की भाषा ही उसे यथार्थ के नजदीक ले जाती है। इसके लिए सर्वप्रथम रचनाकार को उस पात्र को अपने में जीना होता है फिर आती है शब्द चयन की समस्या जो उसे पाठकों के हर एक वर्ग को अपने दायरे में रखकर लिखनी पड़ती है। उसके सोच व अवस्थाओं से रूबरू होना आवश्यक है। कलावती की पढ़ाई आधे में ही छूट जाती है जिससे शैक्षणिक तौर पर उसकी भाषा की परिपक्वता तो इतनी सुदृढ़ नहीं जान पड़ती। इसे लेखक ने कुछ गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया है -

"रे रे लुयो रे रेला रेला

कुड़का पीते रामीन गुग पियो न पियो

बाबान लोते माँ दिरो हल्लो ले

कुड़का पीते रामीन गुडा पियो-पियो

बाबान लोनु तीर्थ किरो ह्ल्यो ले"[3]

इस तरह का प्रयोग लेखक ने अपने उपन्यास 'फाँस' में बखूबी से किया है। और इसी प्रकार संजीव ने 'धार' उपन्यास में रोचकता एवं स्वाभाविकता निर्माण करने की दृष्टि से संजीव ने कुछ फ़िल्मी गीतों का प्रयोग भी किया है जैसे-

"घड़ी दो घड़ी के है बादल ये काले

ये दिन तो हमेशा नहीं रहने वाले

घुटे डम तो क्या साँस फिर भी लिये जा

बुराई के बदले दुआएँ दिये जा।"[4]

उपन्यासकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फाँस' में बहुत ही मार्मिक ढंग से कथावस्तु में गीत की एक पंकित का उपयोग किया है, "तेरी दुनिया से दूर चले होक मजबूर हमें याद रखना ..।"[5] काफी कुछ अर्थ देती है यह पंक्ति। भारतीय किसान इस व्यवस्था को शायद यह कहता होगा कि यह दुनिया हमारी कभी हुई ही नहीं। तुम्हीं की है। मजबूरन हमें दूर जाना पड़ रहा है। किसानों की समस्याओं पर, जीवन पर, आत्महत्या रोकने की अपील करता यह अनुपम शिल्प भारतीय साहित्य की बेजोड़ कलाकृति है। अंत में उपन्यासकार द्वारा इस उपन्यास में कविता के माध्यम से निम्नलिखित पंक्तियों का प्रयोग किया गया, जो उपन्यास को प्रभावी बनाने में इन पंक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

'जमीन जल चुकी है, आसमान बाकी है,

दरख्तों तुम्हारा इंतजार बाकी है,

वो जो खेतों के मेंड़ों पर उदास बैठे हैं,

बादलो! अब तो बरस जाओ सूखी जमीन पर,

मकान गिरवी है और लगान बाकी है।'

संजीव ने किसान के माध्यम से उपरोक्त मार्मिक पंक्तियों के द्वारा किसान के दर्द एवं पीड़ा को हमारे सामने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अगर यही संदेश संजीव गद्य के माध्यम से व्यक्त करते तो इतना प्रभावशाली नहीं होता।

अंत में कहा जा सकता है कि संजीव ने इस उपन्यास के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए देशकाल एवं वातावरण के अनुसार कहीं कहीं पर काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। इससे कथा में रोचकता बनी रहती है और पाठक भी उपन्यास में व्यक्त मार्मिक पल को अनुभव करते हैं।

5.2. शैली-

कोई भी कथा, कहानी, कविता या नाटक जैसी साहित्यिक विधा के संप्रेषण के लिए जिसकी आवश्यकता होती है उसे 'शैली' कहते हैं। 'शैली' का अंग्रेजी पर्याय 'स्टाइल' है। कथानक के प्रस्तुतीकरण की विभिन्न शैलियाँ होती है जिन्हें उपन्यासकार अपनी आवश्यकता के अनुसार एवं कथानक के अनुरूप अपनाता है, जिससे वह कथानक में अधिक से अधिक अपील और प्रभाव उत्पन्न न कर सके वस्तुत: कुशल उपन्यासकार ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करता है जिसे पाठक केवल पाठक ही नहीं रह जाता वह स्वयं अपने को उपन्यास का पात्र जैसा ही समझ लेता है। उसके सुख-दुःख को अपना समझ लेता है। और दोनों के बीच की दूरी जितनी ही कम हो जाती है उपन्यास उतना ही सफल समझा जाता है।

संजीव के उपन्यासों में वर्ण विषय का कलात्मक प्रस्तुतीकरण हुआ है जिसके कारण शिल्प सौष्ठव सफल बना हुआ है। किसी बात को कहने या लिखने के विशेष ढंग को शैली कहते हैं। 'शैली' का संबंध उपन्यास के कथावस्तु, पात्र, संवाद तथा वातावरण आदि तत्त्वों के साथ होता है। 'शैली' का महत्व बताते हुए डॉ. त्रिभुवन सिंह कहते हैं–"उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ चित्रण में 'शैली' का विशेष महत्त्व होता है, यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि 'यथार्थ' उपन्यासों का प्राण है तो हमें वहीं यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि 'स्वाभाविक' शैली ही वह पंचतत्त्व है जिसके द्वारा 'यथार्थ' का स्वरूप निर्मित होता है। यदि उपन्यासों के अंदर शैली की स्वाभाविकता नहीं है तो यथार्थ घटना और कथावस्तु के होते हुए भी उपन्यास कभी भी यथार्थ चित्रण में समर्थ नहीं हो सकता और न तो उसमें मानव जीवन की अभिव्यक्ति ही रूप में हो पायेगी।"[6] इस कथन से मालूम होता है कि उपन्यास में शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है और शैली का सहज, स्वाभाविक होने पर उपन्यास की सफलता निर्भर रहती है। संजीव ने अपने कथा-साहित्य की भाषा को अधिक रोचक, प्रवाहमयी एवं प्रभावकारी बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है

संजीव का उपन्यास नई रचानात्मक पहल है। उनके उपन्यासों के शिल्प में वर्णनात्मकता के साथ ही यथार्थ और लोकतत्व का कुशल संयोजन मिलता है। मनुष्य के जीवन में हर कार्य के पीछे कोई-न-

कोई उद्देश्य होता है । पाश्चात्य आलोचकों ने साहित्य के प्रधान उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति, जीवन का आलोचना करना प्रसन्नता एवं शिक्षा देना आदि माने हैं। उपन्यास के विषय क्षेत्र के विकास के साथ- साथ उसके लक्ष्य में भी विविधता दिखाई देती है । आधुनिक काल का उपन्यासकार सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि में से किसी भी प्रकार की रचना किसी न किसी उद्देश्य को लेकर ही लिखता है। आज के उपन्यासों का उद्देश्य मनुष्य जीवन की व्याख्या करना, मनुष्य के वास्तविक जीवन को अभिव्यक्त करना, मानवतावादी दृष्टि का विकास करना, मनुष्य के विविध अंगों का मूल्यांकन है। पर संजीव ने पिछड़े, उपेक्षित, वर्जित क्षेत्र की दर्दनाक व्यथा को वाणी दी है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण-आंचलिक, मेहनतकश, उपेक्षित तथा शोषित वर्ग की करुण कहानी को प्रस्तुत हुआ है। संजीव ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विषमताओं को केंद्रबिंदु बनाया है। मानव जीवन की विविध समस्याओं का मार्मिक एवं कलात्मक उदघाटन तथा मजदूर, दलित, किसान, पीड़ित, शोषित नारी, आदिवासी तथा शोषितों को मुक्त करने के पक्ष में संजीव की रचनाओं का उद्देश्य परिलक्षित होता है । उनका 'फाँस' उपन्यास में आर्थिक विषमता, किसानों की दयनीय स्थिति, जातिभेद, शोषण, निम्नवर्ग और उनका जीवन संघर्ष एवं पूंजीपतियों की काली करतूतों को वर्णन अलग अलग शिलियों में हुआ है। सरकार महाराष्ट्र के विदर्भ देश के गरीब किसानों का खून के रस का आस्वाद किस प्रकार लेते हैं उसे 'फाँस' में मार्मिक शैली में स्पष्ट किया गया है। इसी तरह देखा जाय तो 'सर्कस' उपन्यास में उपेक्षित कलाकारों की व्यथा 'सर्कस' की दुनिया का भूगोल, अन्तर्विरोध कलाकारों की उपेक्षा, सर्कस मालिकों की कुटिलताएं, कलाकारों का शोषण एवं त्रासदी तथा सर्कस की अंदरुनी दुनिया को उजागर किया है । 'सावधान ! नीचे आग है' उपन्यास कोयला अंचल क्षेत्र की खदान है जो जल प्लायन का शिकार बन गयी थी। इसमें खदान में काम करने वाले मजदूरों का दयनीय जीवन, ठेकेदार दलालों की कुटिलताएं, शोषण तंत्र के नए रूप और व्यवस्थागत विसंगतियों का यथार्थ रूप से चित्रण हुआ है । । संजीव के 'फाँस' उपन्यास में संवाद, भाषण, पत्रात्मक, व्यंग्यात्मक, पूर्वदी तथा फंतासी आदि शैलियों का प्रयोग परिलक्षित होता है।

5.2.1. संवादात्मक शैली-

संवादात्मक शैली मूलतः नाटक से संबंधित है। नाटकीय अथवा चमत्कारिक प्रभाव की सृष्टि करने की दृष्टि से इसका विशेष महत्व होता है। संजीव ने विवेच्य उपन्यासों में संवाद शैली का काफी मात्रा में प्रयोग किया है। संवाद योजना से उपन्यास के कथानक में नाट्यात्मकता, सजीवता, स्पष्टता एवं रोचकता आ जाती है। विलियम हेनरी हडसन का मत है कि- "उपन्यास की शास्त्रीय या तकनीकी सफलता का सबसे तगड़ा प्रमाण उसकी कथोपकथन योजना ही प्रस्तुति करती है।"[7] इससे ज्ञात होता है कि उपन्यास की सफलता संवाद शैली पर निर्भर होती है। संवाद जितने संक्षिप्त होंगे उतने ही अधिक प्रभावशाली होंगे। तीन-चार पृष्ठों के भाषण को कथोकथन नहीं कहा जा सकता। कथोकथन या संवाद शैली से एक ओर उपन्यास का कथासूत्र आगे बढ़ाता है तो दूसरी ओर पात्रों का चरित्रांकन होता है, साथ ही रोचकता भी बढ़ती है। संजीव के कथा-साहित्य में संवाद शैली का काफी मात्रा में प्रयोग परिलक्षित होता है। जैसे- संजीव के 'फाँस' उपन्यास में दिखाया गया है कि - विजयेन्द्र को नाना का तर्क कुछ-कुछ वजनी लगा, फिर भी नये बछड़े की तरह अभी भी वह खूंटा तुड़ाने से बाज नहीं आ रहा था-

" कोई चालाकी तो नहीं ?"

"अरे नहीं बाबा। चलो पहले उमा के घर ही कहते हैं।"

ट्रेन से चंद्रपुर। फिर चन्द्रपुर से एक दोस्त की मोटरसाइकिल।

"कहाँ चलूँ ? मैंने तो देखा नहीं है घर।" विज्जी ने पूछा।

"यह तुम्हारा नाना किस मर्ज की दवा है।"

"तीन बजे अपराह्न को वे उमा के घर पहुँचे।"[8]

संजीव के कथा साहित्य में संवादात्मक शैली का काफी मात्रा में प्रयोग हुआ है ।जैसे-'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास का नायक पुलिस उपाधीक्षक कुमार और राघो बाबू के बीच भरत शर्मा के अपहरण के सन्दर्भ में संवाद परिलक्षित होता है, आपको तो मालूम ही होगा कि भरत शर्मा का अपहरण हो

'हाँ ।'

'अपहरण के पहले जिस आखिरी आदमी से वे मिले थे, वे आप थे ।'

'संयोग है ।'

'क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि यह अपहरण किसने किया ?'

'ना ।'

'परशुराम के बारे में आपका क्या ख्याल है?'

'ये परशुराम कौन है बेटा ?'

'वही जो आपके यहाँ कभी मुजलिम था,

अब डकैती और किडनैपिंग करता फिरता है।'

'आ .....! परशुआ !'

'याद आया ?'

'हाँ ! कुछ-कुछ, मगर .....।'

'उसकी हुलिया कैसी थी ?'

'हुलिया'

'गोरा था'

'गोर कहें कि साँवर !'

'कद ? मेरा मतलब लंबा था या ?

'न लंबा, न नाटा!'

'शरीर भारी था!'

'न भारी न दूबर !'"[9]

इस तरह देखा जाता है कि संजीव के 'फाँस' उपन्यास में संवादात्मक शैली का प्रयोग अधिकतर जगहों में हुआ है। उनके द्वारा निर्मित पात्रों के मध्य अनेक जगहों पर कथोपकथन चलता है, जिससे कथा आगे बढ़ती है।

5.2.2. व्याख्यात्मक शैली-

लेखक को अपने विचारों को स्थापित करने लिए व्याख्यात्मक शैली पर आश्रित रहना पड़ता है। कभी-कभी वह अपने विचार स्वयं या पात्रों के माध्यम से इसी शैली में व्यक्त करता है। कथा-साहित्य में रोचकता का गुण नितांत आवश्यक माना जाता है, क्योंकि इस गुण से रहित साहित्य के प्रति पाठक की रूचि निर्माण नहीं हो सकती है। घटनाओं और पात्रों का इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जिससे पाठक उस विषय में जिज्ञासु हो उठे कि अब इसके आगे क्या आयेगा ? कभी-कभी उन घटनाओं या पात्रों में इतनी व्यंजकता नहीं रहती है कि वे पाठकों की जिज्ञासा शांत कर सकें। व्याख्या के माध्यम से साहित्यकार कथ्य, विषय, विचार और पात्र को बोधगम्य एवं निर्भ्रान्त बना देता है।

संजीव ने 'फाँस' उपन्यास के माध्यम किसानों की पीड़ा को बताया गया है कि किसान किस तरह अपने को फाँसी के फंदे पर लटका रहे हैं। आत्महत्या कर रहे हैं, अपनी बली चढ़ा रहे हैं, ये सब बाते शिबू की बेटी कलावती व्याख्यात्मक रूप से व्यक्त करती है कि- "सुनो, मैंने स्कूल के दिनों में पेड़ से लटके एक ऋणग्रस्त किसान की लाश देखी थी, वो अपना मुलगा जीवन था न, उसका बाप। छूते ही चेहरा धूम गया था मेरी तरफ। मैं उसकी बुझी-बुझी आँखों में झाँकती रही- वह चेहरा जगह-जगह शक्ल बदल कर सवालिया निशान की तरह आता रहता है।

"मैं उससे पूछती हूँ "तुम्हे किसने मारा-कर्ज ने ?"

वह जवाब नहीं देता।

"अभाव ने?"

जवाब नहीं।

"मजबूरी ने ?"

जवाब नहीं।

"फिर ...?"

"सबने मारा, पर सबसे ज्यादा मैंने !"[10]

इस पंक्ति से लेखक ने बहुत कुछ कहने की कोशिश की है। किस तरह व्यवस्था ने किसानों को कर्ज ने दबा दिया है। इसके चलते किसान फाँसी के फंदे पर झूल रहे हैं। इस तरह जरूरत के अनुकूल उपन्यासकार ने उपन्यास में अनेक जगहों पर व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग करके पाठक को घटना को अच्छे से समझाने का प्रयास किया है।

5.2.3. आत्मलाप शैली-

आत्मलाप शैली में उत्तम पुरुष में कथानक को प्रस्तुत किया जाता है। इसमें नायक-नायिका अपनी कथा स्वयं सुनाते हैं। कथानक का विकास 'मैं' के माध्यम से होता है। कथानक में जिन घटनाओं तथा परिस्थितियों का चित्रण होता है वह 'मैं' से संबंधित होती हैं। 'फाँस' उपन्यास में भी लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से इस शैली को प्रस्तुत किया है। एक किसान दूसरे किसान से कहता है कि- "मैं तो यार घर से ओढ़ने के लिए भी नहीं लाया कुछ। रात भर कुकड़ाता रहा ठंड से। बारह के बाद ठंड सही नहीं जाती। धोती खोलकर ओढ़ी मगर कहाँ ....? ऐसा ही रहा तो मैं तो बनियों को बेचकर चला जाऊंगा। जब देश का हर फैसला देसी-विदेशी बनियों को ही करना है तो सरकार क्यों हमें चूतिया बना रही रही !"[11] ऐसे कई उदाहरण उपन्यास में देखने को मिलता है। 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में सुदीप्त और उसका पत्रकार मित्र समीर की एक ही कथा को प्रथम पुरुष शैली में कहते हैं। आत्मकथात्मक शैली का उदाहरण है- "मैं जिस

लोकल से वहाँ उतरा उस जैसी इक्की-दुक्की उपेक्षित पैसेंजर गाडियों को छोड़कर न कोई अच्छी गाड़ी यहाँ रूकती है।, "मैं और आगे बढ़ता हूँ। क्या पता कभी-कभी पहाड़ो की चोटियों पर भी मन्दिर या धर्मशालाएँ बनी मिल जाती है ...आगे की चढ़ाई बहुत कठिन थी मेरा दम फूल रहा था।"[12] यहाँ स्पष्ट है कि 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में आत्मलाप शैली का प्रयोग अंकन किया गया है।

इस तरह लेखक ने 'फाँस' उपन्यास में जगह जगह पर आत्मालाप शैली का प्रयोग कर कथा को आगे बढ़ाया।

5.2.4. वर्णनात्मक शैली-

साहित्य में वर्णनात्मक शैली सर्वाधिक प्रचलित एवं सुविधाजनक शैली है। इस शैली के द्वारा लेखक को अपेक्षाकृत विषय-विस्तार के अधिक भूमि मिल जाती है। इस शैली को अपनाने वाले लेखक को कलात्मकता का उतना ध्यान नहीं रखना पड़ता। लेखक तटस्थ भाव से तटस्थ व्यक्ति की तरह पात्र चरित्र तथा घटनाओं आदि का वर्णन करता है। जैसे, 'फाँस' उपन्यास में लेखक ने व्यक्त किया है कि- "अपुन का देश क्या कमाल का देश ठहरा !ठीक ही कहता है नाना, थार की धूल अमेरिका में गिरती है और विदर्भ की आत्महत्या की खबर पूरी दुनिया में ! विदर्भ ही क्यों, पंजाब, गुजरात, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, बुंदेलखंड, की भी। रूहों की तरह लावारिस उड़ते हैं।कापूस के रेश और अब तो हर खबर और हर निर्णय सवार रहता है इन रेशों पर। किसानों के नाम पर अरबों रुपये लूटना है तो कृषक आत्महत्या, अपनी चीनी मिल लगाने का बहाना ढूँढ़ना है तो कृषक आत्महत्या, विरोधी पार्टी को दागना है तो कृषक आत्महत्या बहुत कारगर है कृषक आत्महत्या।"[13] इस प्रकार लेखक 'फाँस' उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कर कथा को विस्तार दिया है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास की भाषा स्वाभाविक, सहज और सरल है। उसमें आंचलिकता, जनधर्मिता, काव्यात्मकता, प्रवाहत्मकता आदि भाषागत विशेषताएँ विद्यमान

है। शैली के अंतर्गत संवादात्मक शैली, व्याख्यात्मक शैली, आत्मालाप शैली, वर्णनात्मक शैली आदि के प्रयोग से उनका यह उपन्यास भाषा-शैली की दृष्टि से अत्यंत आकर्षक बन गया है।

सन्दर्भ-

1.श्यामसुंदर दास, साहित्यालोचन, पृ. सं.- 231

2.संजीव, फाँस, पृ. सं. -15

3.संजीव, फाँस उपन्यास, पृ. सं.- 242

4.संजीव, धार उपन्यास, पृ. सं.-86

5.संजीव, पृ. सं.-125

6.डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास: शिल्प और प्रयोग, पृ. सं.-96

7.डॉ. भूलिकादेवी त्रिवेदी, यशपाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. सं.-145

8. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 77

9. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ. सं.- 52

10. संजीव, फाँस, पृ. स.- 219

11. वही, पृ. सं.-141

12. संजीव, पाँव तले की दूब, पृ. सं.-5-7

13. संजीव, फाँस, पृ. सं.- 155

उपसंहार

साहित्य और समाज में अटूट सम्बन्ध है। समाज में जो भी परिवर्तन होते हैं साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति अवश्य होती है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में से उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जिसमें समसामयिकता का आग्रह अधिक से अधिक होता है। उपन्यासों में ही लेखक को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता, जीवन दर्शन तथा सामाजिक यथार्थ की वास्तविक अभिव्यक्ति सर्वाधिक दिखाई देती है। उपन्यास को आधुनिक मनुष्य की यथार्थ खोज के प्रमुख पर्यायों में माना जा सकता है। साहित्यकार समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग होने के नाते समाज में घटित होने वाली घटनाओं से वह अपने आप को अलग नहीं कर सकता जो घटनाएं वह समाज में देखता है, जिन परिस्थितियों को वह भोगता है उन्हीं का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है। संजीव के कथा-साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली है।

बीसवीं सदी के उत्तारार्ध में नई भावभूमि को लेकर उभरे उपन्यासकारों में संजीव अपनी अलग पहचान रखते हैं। उन्होंने उपन्यास विधा में अछूते सन्दर्भों की कलात्मक प्रस्तुति की है। संजीव का उपन्यास मूलत: पिछड़े, दलितों, उपेक्षित, वर्जित क्षेत्र की दर्दनाक व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यास ग्रामीण, आँचलिक, मेहनतकश, उपेक्षित तथा शोषित वर्ग की कहानी प्रस्तुत करते हैं। कुटिल साजिशों की पोल खोलकर बुनियादी तथ्यों का उद्घाटन करते हैं। वे कथ्य में नवीनता ही नहीं ढूँढ़ते बल्कि उसकी व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति भी करते हैं। जनजातीय अभिशप्त जीवन, औद्योगीकरण के तहत होने वाला विस्थापन, दलित चेतना, लोक जीवन और लोक संस्कृति से जुड़े विभिन्न पहलुओं को उजागर कर बड़ी गहराई से समझकर पाठकों के सामने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

भारतवर्ष में साठ-सत्तर प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं। भारत गाँवों का देश है। भारतीय समाज और संस्कृति का सजीव चित्रण गाँवों में मौजूद है। गाँवों में भारत की सदियों से चली आ रही परंपराएं आज भी विद्यमान है। भारतवर्ष के महत्त्व का वास्तविक मूल्यांकन गाँवों से संभव है। भारतवर्ष जैसे विशाल

भूखंड में निवास करने वाले ग्रामीण जनों के माध्यम से देश की समाज और संस्कृति की झलक दिखाई पड़ती है। महात्मा गाँधी भी मानते थे कि वास्तविक भारत का दर्शन गाँवों में ही संभव है, जहां भारत की आत्मा बसी हुई है। भारत एक ऐसा देश है जहां पर 'चार कोस में पानी बदले तो आठ कोस में वाणी' प्रचलन है। अतः यह स्पष्ट है कि भारत विभिन्न संस्कृतियों का रंगमंच है। भारत में जितने भी राज्य है सबकी अलग-अलग संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज हैं। यह विविधता सहनशीलता का प्रतीक है। प्रत्येक राज्य की संस्कृति अलग-अलग होने के बावजूद कई बिंदु पर इसमें समानताएं भी है।

कृषि जो भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार थी, वही किसानों के गले की फाँस कैसे बन गयी इसे संजीव ने अपने उपन्यास 'फाँस' के जरिये इसे गहराई से समझाने की कोशिश की है। इस दौर के जितने चर्चित विमर्श रहे हैं या जिन आंदोलनों ने जनमानस पर असर डाला, उन विमर्शों और आंदोलनों की स्पष्ट छायाएं भी इस उपन्यास में नजर आती हैं। संजीव का उपन्यास 'फाँस' विदर्भ के 11 जिलों के किसानों को करीब से देखने, जानने, समझने के क्रम में अध्ययन किया गया है। "संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध" विषय के पाँचों अध्यायों का अध्ययन करने के पश्चात् अनेक तथ्य समाने आये हैं जिसका सार निम्नलिखित है-

प्रथम अध्याय 'शोध परिचय' का अध्ययन करने से शोध कार्य में काफी सहायता मिली। शोध का परिचय', 'शोध समस्या', 'शोध कार्य का उद्देश्य', 'पूर्व कार्यों की समीक्षा', 'शोध-प्रविधि', 'शोध का औचित्य', 'शोध की सीमा', 'शोध का प्रयोजन' 'शोध कार्य का ढाँचा' आदि विषयों का पूर्व निधार्रण करना शोध कार्य के लिए सहायक सिद्ध हुआ है।

द्वितीय अध्याय 'संजीव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व और यथार्थबोध : अवधारणा एवं स्वरूप का अध्ययन करने से मिला कि उनके साहित्य को समझने के लिए उनके वास्तविक जीवन को समझना आवश्यक है। प्रेमचन्द के पश्चात् भारतीय ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपनी कथा का मूल विषय बनाने वाले हिंदी साहित्कारों में संजीव का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् गाँव की

समकालीन जीवन पर लिखा गया संजीव का 'फाँस' पहला उपन्यास है जिसमें परिवर्तित किसान जीवन की छटपटाहट, आत्महत्या करते किसान और ग्राम्य मानसिकता का व्यापकता से चित्रण है। संजीव एक अच्छे शिल्पी की तरह अपनी रचानाओं का ताना-बाना अपनी विशिष्ट शैली में किया है। संजीव एक विचारक, समाज सुधारक, और राजनैतिक सरोकार वाले साहित्यकार है। अगर देखा जाय तो संजीव का जीवन और साहित्य विविधता से भरा हुआ है। वे अपने जीवन में भोगा और देखा हुआ यथार्थ को ही साहित्य में व्याप्त किया है। संजीव की प्रतिभा तथा चिन्तन उनके साहित्य में दिखाई देता है। संजीव बहुआयामी प्रतिभा संपन्न रचनाकार है। उनकी प्रतिभा रचानाओं के माध्यम से दिखायी पड़ती है। सृजनात्मक, मेधा एवं ज्ञान का परिचय उनके प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, रिपोतार्ज, संस्मरण, साक्षात्कार, टिप्पणी, आदि विधाओं की रचनाओं से मिलता है।

हर एक रचनाकार अपनी समसामयिक परिस्थितियों का देन होता है। उसकी रचनाओं के संवेदनात्मक उद्देश्य अनिवार्य रूप से उसकी जीवन और जीवन के प्रश्नों से संबंधित होते हैं। शोध कार्य के दौरान संजीव के जीवन की परिस्थितियों के बारे में मिलने वाले तथ्य बेहद दिलचस्प और रोमांचक लगे। सामन्ती शोषण, जातीय भेदभाव और आर्थिक विषमता के माहौल में जन्मे किसी व्यक्ति का ऐसा विकास कम ही होता है। उनके परिवार में न उच्च शिक्षा की परंपरा थी और न ही दूर-दूर तक कोई साहित्यिक विरासत थी। मगर जिस दौर में संजीव ने होश संभाला वह आजादी के बाद नव निर्माण के सपनों का दौर था। तब जनता में यह भरोसा अधिक था कि शिक्षा से जीवन की परिस्थितियाँ बदली जा सकती हैं। संजीव के परिजनों द्वारा उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के एक गाँव बाँगरकला से पश्चिम बंगाल के कुल्टी कस्बे में पहुंचने, वहाँ कारखाने में नौकरी करने तथा संजीव को पढ़ा-लिखकर बड़ा आदमी बनाने के सपने की पृष्ठभूमि में उनका विकास हुआ। उनकी जिन्दगी का आर्थिक सफर निम्नवर्ग से मध्यवर्ग तक का सफर है। इस सफर के दौरान उन्हें हमेशा सामाजिक, आर्थिक बदलाव की जरूरत महसूस होती रही है। साहित्य उनके लिए इस बदलाव की आकांक्षा की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। बुनियादी परिवर्तन की यही आकांक्षा समकालीन कथा-साहित्य का मुख्य स्वर है और यही समकालीन कथा-साहित्य की पहचान है।

संजीव के उपन्यासों में विभिन्न सरोकारों से जूझते समाज के अंतर्गत विभिन्न सामाजिक सरोकारों को दर्शाया गया है। संजीव के उपन्यासों में गरीब, मजदूर और दलित, अनपढ़ता, गरीबी, अंधविश्वास एवं धार्मिक कर्मकांड जैसी सामाजिक समस्याओं की मार्मिक कथा है। दूसरी तरफ उच्च वर्ग भी पाप-पुण्य और दिखावे के लिए इन आडम्बरों में फंसा नजर आ रहा है। उनके उपन्यासों के अनेक पात्र अत्याचार और जुल्म के खिलाफ संघर्ष करने के लिए उठ खड़े होते हैं। उनके उपन्यासों में यह दर्शाया गया है कि कई लोग सामाजिक प्रताड़ना, गरीबी और अपमान के कारण दब्बू बन जाते हैं। उनमें प्रतिकार करने की शक्ति क्षीण हो जाती है और वे भीरुपन में अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। इसके साथ ही यह दर्शाया है कि शोषण, सामाजिक प्रताड़ना, बेबसी, गरीबी, बेरोजगारी, विस्थापन, अनपढ़ता और बीमारी के कारण लोग मानसिक पीड़ा से गुजर रहे हैं।

इसी अध्याय में यथार्थबोध को भी दर्शाया गया है, 'यथार्थ' की प्राप्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् इसकी तर्कसंगत परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि वस्तु को उसके यथार्थ रूप में अथवा साहित्य में समाज का वास्तविक चित्रण करना यथार्थ है। सामाजिक यथार्थ की संकल्पना में समाज का वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण करना रहता है, जिसमें समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक परिवेश तथा समस्याएँ ही सामाजिक यथार्थ बनती हैं। विवेच्य कथा-साहित्य में दलित समाज की सामाजिक स्थिति दयनीय परिलक्षित होती है। दलित समाज का सामाजिक यथार्थ दलितों की स्थिति और किसानों की गति को प्रस्तुत करता है। विवेच्य कथा-साहित्य में आदिवासी समाज के सामाजिक यथार्थ में अंधविश्वास, कुप्रथाएं, अज्ञान, गरीबी तथा उनके शोषण का यथार्थ चित्रण हुआ है। निम्नवर्गीय समाज के सामाजिक यथार्थ में बेकारी, असुरक्षित जीवन का तथा उच्च वर्ग द्वारा शोषण का यथार्थ अंकन हुआ है। संजीव के कथा-साहित्य में उच्चवर्गीय समाज निरंकुश जीवन जीने वाला सुविधाभोगी तथा प्रदर्शनप्रिय एवं संपत्ति के प्रति अतिरिक्त आशक्ति रखने वाला परिलक्षित होता है। यथार्थ का यथार्थवाद से और साहित्य से संबंधों को उजागर करते हुए यथार्थबोध और मानव के विविध पक्षों पर विचार के पश्चात् देखा गया है ये सभी एक दूसरे के पूरक है।

तृतीय अध्याय 'फाँस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ-बोध' इसमें 'फाँस' के माध्यम से विदर्भ के किसानों की दयनीय अवस्था से संजीव परिचित कराते हैं। वे यह भी बताते हैं कि इस काली मिट्टी में उर्वर शक्ति बहुत है लेकिन साधनों के अभाव में किसान स्वयं अनुर्वर हो गया है। यह भी बताया गया है कि सामाजिक व्यवस्था ने गाँव का मुखिया, पटवारी, नेता, सेठ, साहूकार, धार्मिक विश्वास और बैंक सब मिलकर किसानों को लूट रहे हैं। सरकार भी झूठे वादे का हवाला देती आ रही है। इसीलिए आज भी किसान आत्महत्या कर रहें हैं, यह तथ्य दिन के उजाले की तरह सबके सामने हैं पर इसके समाधान के लिए कोई गम्भीर प्रयास नहीं किये जा रहे हैं, यह चिंता 'फाँस' के मूल में बताया गया है। इसी कारण किसान आज भी सादा जीवन व्यतीत कर रहें हैं। सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत जातिभेद, छुआ-छूत, अशिक्षा, ठेकेदार द्वारा शोषण, जमींदार द्वारा शोषण, सवर्णों द्वारा शोषण, पुलिस द्वारा शोषण, नारी शोषण, महाजन द्वारा शोषण, पारिवारिक शोषण, पूंजीपति द्वारा शोषण, व्यसनाधीनता की समस्या, प्रदुषण की समस्या आदि समस्याओं का चित्रण प्रभावात्मक रूप में हुआ है।

'फाँस' उपन्यास में विदर्भ की स्त्रियों की स्थिति अत्यंत चिंताजनक दिखायी देती है। जिनके लिए रोटी, कपड़ा और मकान आदि चीजे आवश्यक होती हैं, लेकिन उनके जीवन में यह भी नसीब नहीं हैं। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही स्त्री के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार की वर्ग भावना चली आई हैं। आज भी किसान की स्त्रियों को हीन भावना से देखी जाती है। किसान की स्त्रियां खेतों में दिन रात काम करती हैं, लेकिन भारतीय साहित्य में किसान की पत्नी को हमारे तथा कथित प्रगितशील समाज ने कभी किसान समझा ही नहीं परन्तु सच्चाई यह है कि कृषि व्यवस्था और श्रम संस्कृति का मूलाधार स्त्री ही रही है। वर्ण व्यवस्था में भी सबसे अन्तिम चरण समझे जाने वाले दलित या शूद्र से भी बदतर किसान स्त्री दिखाई देती है। सोचने वाली बात तो यह है कि हमारे विभिन्न साहित्य विमर्श के पैरोकार और सामाजिक मानवाधिकार की दुहाई देने वाली एन. जी. ओ. जैसी मुनाफाखोर एजेंसियां इस स्वार्थान्ध बहती हुई गंगा में हाथ धोती नजर आती है। लेकिन किसान और किसान की स्त्री के सन्दर्भ में असंवेदनशील नजर आती है। दुनिया की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि स्त्री का कोई धर्म नहीं होता, उसकी कोई जाति नहीं होती है, तो केवल कर्तव्य की

भावना, वह किसी की बेटी, किसी की बहन, किसी की पत्नी, किसी की बहू, किसी की माँ तो किसी की दादी या नानी है। वह कभी हारती नहीं है परन्तु उसे जीता जा सकता है केवल प्यार से। प्रस्तुत उपन्यास की एक अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र 'शुभा' क्षत्रिय मराठा परिवार की स्त्री है। वह भी किसान परिवार की सदस्य है। उसकी एक अभिन्न सहेली 'शकुन' है जो शूद्र और दलित परिवार की है। शुभा का लड़का अशोक शकुन की लड़की कलावती से बहुत प्यार करता है। लेकिन उनके बीच जाति और धर्म की दीवार खड़ी होती है। इसीलिए चाहते हुए भी शुभा मजबूर और लाचार बनती है। अर्थात् वह धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने का अनुरोध करती है। उसका बेटा अशोक भी माँ को धर्म की परिभाषा समझाने की कोशिश करता है। लेकिन वह अज्ञान और अशिक्षा के कारण उलझकर रह जाती है, इस तरह आज भी किसानों के जीवन में ये संघर्ष फाँस में दिखाया गया है।

संजीव के कथा-साहत्यि में धार्मिक जीवन का सजीव स्वरूप गाँवों में मिलता है। संस्कृति और धर्म का निर्माण मनुष्य करता है, जो समाज का आवश्यक अंग है। यह मनुष्य के जीवन के साथ जुड़ा होता है। यह मनुष्य को अनुवांशिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होती है। किसी भी अंचल में व्याप्त परंपरा, रीति-नीति, विश्वास, आदर्श, दर्शन, संस्कार, रूढ़ियाँ, प्रथा, जीवन, भाषा, गीत, नृत्य, रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान का सामूहिक रूप धर्म संस्कृति के अंतर्गत आती हैं। भारतीय संस्कृति बहुआमायी है जिसका वास्तव चित्रण ग्रामीण जीवन में मिलता है। धार्मिक समस्या का भी चित्रण काफी मात्रा में परिलक्षित होता है, उनकी रचनाओं में दलित, आदिवासी लोगों में अशिक्षा, अज्ञान के कारण आज भी अंधविश्वास की मात्रा बढ़ती हुई दिखाई देती है। हर धर्म मानवता और प्रेम की सीख देता है। धर्म का प्रभाव हर समाज के घटक पर होता है। धार्मिक प्रभाव से समाज में अनेक अशोभनीय प्रकार घटित होते हैं। आज विज्ञान युग में भी दलित, आदिवासी लोगों में धर्मान्धता के कारण अंधविश्वास, शुभ-अशुभ, भूत-प्रेत तथा डायन, मंत्र-तंत्र तथा जादू टोना, पाप-पुण्य संबंधी अंधविश्वास, भविष्य देखना, ओझा को महत्त्व देना, देवी-देवता की प्रार्थना करना, हरिणा का मांस खाने से हैजा होना, गाय का दूध पीने से कोप होना, अकाल महामारी का कारण धर्म को मानना, दान-दक्षिणा देना आदि अंधविश्वास हैं। अतृप्त मृतात्मा का भूत-पिशाच्य बनना, भूत का गाँव में

घूमना। मंत्र-तंत्र के बल पर भूत से छुटकारा पाना। भूत-प्रेत-डायन संबंधी अंधविश्वास हैं। शाप देना मन्नत माँगना, यह धारणाएं रही हैं। शिक्षित समाज भी अंधविश्वास के जाल में अटका हुआ है। भारतीय संस्कृति में धार्मिकता को काफी महत्त्व दिया जाता है लेकिन धार्मिक आडबरों तथा पूंजीपति सवर्ण समाज अंधविश्वास के सहारे दलितों का एवं आदिवासियों का मानसिक एवं आर्थिक शोषण करता हुआ संजीव कथा-साहित्य में परिलक्षित होता है।

उपभोक्तावाद एक ऐसी परिघटना है जिसमें जरूरत के लिए नहीं, अपितु मुनाफे के लिए उत्पादन होता है उत्पादित वस्तु के अनुरूप उपभोक्ताओं की इच्छाओं को ढाल दी जाती हैं। संजीव के 'फाँस' उपन्यास में दर्शाया गया है कि उदारीकरण के चलते सरकार का रवैया ही कॉर्पोरेट कल्चर या बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जाहिर तौर से किसी बड़ी पूँजी की प्रसूत होती, बड़ी पूँजी बाजार में लाभ कमाने के उद्देश्य से आती है। उसकी सामाजिक जिम्वेवारी सिर्फ इतनी ही होती है कि ग्राहक या उपभोक्ता ज़िंदा रहे। 'फाँस' उपन्यास में लेखक यह दिखाए है कि इस उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते गाँव के गरीब किसानों की अवस्था दयनीय होती जा रही है।

चौथा अध्याय "'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन का यथार्थ" है जिसमें यह दर्शाया गया है कि उपन्यास का नायक शिवनरायण यानि शिबू एक किसान है उसकी पत्नी शकुन्तला यानि शकुन है शिबू की दो जवान बेटियाँ बड़ी बेटी 'सरस्वती' छोटी बेटी 'कलावती' है। यह परिवार तमाम प्रकार की परेशानियों मुश्किलों के बीच संघर्ष करते हुए अपना जीवन जी रहा है। शिबू और शकुन की भी यही सपना है जो हर माँ-बाप का रहता है। शिबू भी यही चाहता है कि अपनी दोनों लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर एक अच्छे से घर में ब्याह दे लेकिन खेती-किसानी के कर्ज में शिबू इस कदर लगातार फंसता चला जा रहा था कि उसे उसकी पारिवारिक जिम्मेवारियां पूरी होती नहीं दिख रही थी। खेती किसानी के सीमित साधन, आर्थिक तंगी तथा सूखे की मार झेलता शिबू इस खेती-किसानी के लिए बैंकों तथा सेठ-साहूकारों से इतना कर्ज ले चुका था कि यह कर्ज अब उसके गले का फाँस बन चुका था। ऐसे अपनी दोनों मुलगियों यानि

'बेटी' की शादी के लिए दहेज के लाखो रूपये तथा गाड़ी के पैसे वह कहां से लाता। शिबू के अंतर्मन में द्वन्द चल रहा था कि वह क्या करे। किसी तरह वह अपनी पत्नी बायको के गले में पहनी हुई हँसुली को बेच कर बैंक का कर्ज अदा करता है। उसके बाद भी वह समय और समाज को झेल नहीं पाता अंतत एक कुंए में कूदकर जान दे देता है। पीछे छोड़ जाता है दो जवान बेटियां, रोती बिलखती पत्नी शकुन को जिसने गले की हँसुली बैंक के कर्ज और ब्याज चुकाने के चक्कर में बेच दी थी। कर्ज के बोझ तले दबे होने के कारण शकुन के लिए उसकी हँसुली भी एक फाँस बन गई थी। लेकिन शिबू की कहानी किसी एक किसान या एक घर की नहीं है, बल्कि आत्महत्या के लिए मजबूर उन समस्त भारतीय किसानों की महागाथा है, जो इस खेती-किसानी के पेशे में बुरी तरह फँसकर अपना जीवन दांव पर लगा दे रहे हैं। इस प्रकार से यह कथा विदर्भ के किसानों की कथा के साथ-साथ समस्त भारतीय किसानों तथा उनके परिवारों की भी व्यथा-कथा है। शिबू की छोटी बेटी कलावती कहती है कि भारतीय किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में ही बड़ा होता है, कर्ज में ही मर जाता है। इस तरह किसान आत्महत्या की गाथा प्रस्तुत किया गया है।

यह उपन्यास किसान के जीवन की विभिन्न समस्याओं को रेखांकित करता है। वर्तमान में उनकी सबसे बड़ी समस्या आत्महत्या की समस्या है जिसे उपन्यास में ही बड़े मार्मिक ढंग से दिखाया गया है। 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या का जो रूप दिखाई पड़ता है वह वास्तव में उसका एक प्रतिरूप मात्र है। असल जिन्दगी किसानों की इससे भी बदतर दिखाई पड़ती है, परन्तु उपन्यासों में उनके जीवन की कुछ झलक दिखाई पड़ जाती है जो संवेदनाओं को झकझोरकर किसान जीवन पर सोचने के लिए मजबूर करती है। किसान आत्महत्या को उकसाने वाली पृष्ठभूमि को सामने लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य ये उपन्यास करता है। उपन्यासों में खेती की समस्या, कर्ज, दहेज, बाजारवाद, सरकारी नीतियाँ, महंगाई, शोषण आदि किसान जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण हुआ है। 21वीं सदी के उपन्यासकारों ने केवल यथार्थ को अभिव्यक्त नहीं दी, बल्कि आशावाद को भी प्रगट किया है। किसानों को आत्महत्या की ओर ले जाने वाली स्थितियों के विरोध में लड़ने के लिए ये उपन्यास सामाजिक संगठन पर बल देता है। इसमें किसान जीवन को सुधारने के लिए अनेक अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ भी दिए हैं। किसानों को अपने ऊपर मडराते

खतरे की आहट भी इन उपन्यासों में मिलती है। कुल मिलाकर भारतीय किसानों की आज की दशा और आत्महत्या के सन्दर्भ इस उपन्यासों में चित्रित हुआ है। किसानों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार तत्व और किसान आत्महत्याओं की जमीनी सच्चाई नई सदी के इन उपन्यासों में यथार्थ रूप में प्रगट हुई है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहां की 70 प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर रहती है। कृषि मानव जीवन के गुजर-बसर करने की रीढ़ है। लेकिन आजादी के बाद इस कृषि प्रधान देश की कृषि और किसान को बुरी तरह से विस्थापित करने के ही प्रयास हुए। परिणाम यह हुआ कि जो किसान किसी बीमारी का शिकार नहीं होता था, उसे आत्महत्या की बिमारी ने ग्रस लिया। यह अचानक नहीं हुआ। आदमी आत्महत्या तभी करता है, जब उसे मौत जिन्दगी से अच्छी है या जीने के सभी रास्ते बंद हो जाते हैं। यहाँ तो किसानों के आत्महत्या को आत्महत्या कहना भी उचित नहीं। यह तो व्यवस्था द्वारा की हुई हत्या है। यहाँ किसानों को जीने के लिए मदद नहीं दी जाती लेकिन आत्महत्या के बाद उसके परिवारवालों को मदद दी जाती है। किसानों के लिए सरकार नीतियाँ तो बनाती है लेकिन वो नीतियाँ केवल सरकारी फाइलों में ही बंद पड़ी रहती है इससे भी ज्यादातर किसान आत्महत्या करते हैं। यंत्रीकरण के आ जाने से भी किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ा है जो काम मजदूर करते थे वो काम मशीनों ने छीन लिया अब मजदूर बेरोजगार हो गये हैं इसलिए भी किसान आत्महत्या करते हैं।

पाँचवा अध्याय "फाँस उपन्यास की भाषा-शैली" है। संजीव के कथा-साहित्य का शिल्प की दृष्टि से अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट होता कि संजीव ने अपने उपन्यासों में स्वाभाविक, सहज, सरस, सतर्क विचारों द्वारा शिल्प को अपनाया है। इस प्रकार संजीव ने अपनी भाषा को सशक्त बनाने की दृष्टि से मराठी, अवधी, बंगाली, भोजपुरी तथा आदिवासी बोलियों के शब्दों का प्रयोग सफलता से किया है। शब्द योजना को सफल बनाने के लिए संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी, भोजपुरी, बंगाली, अवधी आदि पात्रानुकूल शब्दों का भाषा सौन्दर्य के लिए उपमान, शब्दशक्तियाँ, कहावतें आदि का सार्थक रूप में प्रयोग किया है। संजीव के कथा-साहित्य का व्यापक रूप से अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि संजीव के कथा-

साहित्य की संवेदना पाठक के ह्दय पर पर्याप्त रूप में असर छोड़ देती है। कथा-साहित्यकार के रूप में उनके साहित्य में कथ्य एवं शिल्प संबंधी प्रयोगशीलता दिखाई देती है। हिंदी साहित्य में कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से विवेच्य कथा-साहित्य सफल दिखाई देता है। संजीव ने अपने उपन्यास साहित्य को सशक्त एवं रोचक बनाने की दृष्टि से नई-नई शैलियों का भी प्रयोग किया है । संवादात्मक शैली, व्याख्यात्मक शैली, आत्मालाप शैली, वर्णनात्मक शैली आदि के प्रयोग से उनका यह उपन्यास भाषा-शैली की दृष्टि से अत्यंत आकर्षक बन गया है।

---------- x ----------

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रंथ

1.संजीव, वर्ष – 2015, *फाँस,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

सहायक ग्रंथ

1. आहूजा, राम, वर्ष- 2016, *सामाजिक समस्याएँ,* रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
2. इंगले, जालिंदर, वर्ष- 2007, *समकालीन हिंदी उपन्यास वर्ग एवं संघर्ष,* चन्द्रलोक प्रकाशन, नई दिल्ली
3. उपाध्याय, रमेश, वर्ष- 1999, *आज का पूंजीवाद और उसका उत्तर-आधुनिकतावाद,* प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
4. कस्तवार, रेखा, वर्ष- 2006, *स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. कादिश, गिरीश, वर्ष- 2008, *कथाकार संजीव,* शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली
6. काबरा, कमल नयन, वर्ष- 2010, *भूमण्डलीकरण विचार, नीतियाँ और विकल्प,* संस्थान प्रकाशन, दिल्ली
7. कुमार, नास्ति, वर्ष- 1997, *समाजवादी हिंदी उपन्यासों में चरित्रांकन,* जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
8. कुमारी, डॉ. योगेश, वर्ष- 2000, *यशपाल के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याएँ,* चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर
9. गुप्त, ज्ञानचंद, वर्ष - 1970, *आँचलिक उपन्यास: संवेदना और शिल्प,* अभिनव प्रकाशन, दिल्ली
10. गुप्त, ज्ञानचंद, वर्ष- 1978, *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना,* अभिनव प्रकाशन, दिल्ली
11. गुप्त, डॉ. शान्तिस्वरूप, वर्ष- 1980, *उपन्यास स्वरूप स्वरंचना तथा शिल्प,* अलंकार प्रकाशन, दिल्ली
12. गुप्ता, चमनलाल, वर्ष- 1988, *यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक कथ्य,* शारदा प्रकाशन, दिल्ली
13. गुप्ता, कमला, वर्ष- 1976, *हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद,* अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली

14. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, वर्ष-1998, *समकालीन हिंदी साहित्य:विविध परिदृश्य,* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

15. जोशी, पूरनचंद, वर्ष- 1966, *भारतीय ग्राम: संस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

16. ठाकुर, डॉ.देवेश, वर्ष- 1987, *मैला आँचल की रचना प्रकिया,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली

17. डहेरिया, खेमसिंह, वर्ष- 2013, *समकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन में भूमिका,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली

18. तलवार, डॉ. स्वर्णलता, वर्ष- 1992, *हिंदी उपन्यास और नारी समस्याएँ,* जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

19. तिवारी, डॉ.रमेश, वर्ष -1972, *हिंदी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन,* रचना प्रकाशन इलाहाबाद

20. नवले, प्रो.संजय. वर्ष- 2018, *उपन्यासकार संजीव किसान आत्महत्या:यथार्थ और विकल्प फाँस उपन्यास का सन्दर्भ,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

21. निर्मम, हेमराज, वर्ष- 1976, *हिंदी उपन्यास में मध्यवर्ग,* विभू प्रकाशन, साहिबाबाद

22. पटेल, उत्तमभाई, वर्ष- 1999, *आँचलिक उपन्यासों में ग्राम जीवन,* क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स, कानपुर

23. पाण्डेय, डॉ.राम किंकर, वर्ष- 2016, *हिंदी साहित्य में किसान सपने,* संघर्ष और चुनौतियाँ 21 वीं सदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

24. प्रवीण, सुधीर, पचौरी, वर्ष- 2003, *भूमण्डलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श,* संस्थान प्रकाशन, नई दिल्ली

25. प्रसाद, सरोज, वर्ष- 1972, *प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन,* रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

26. बारैया, प्रो.किरण सिंह. वर्ष-2019, *संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में किसान एवं आदिवासी संघर्ष,* विकास प्रकाशन, कानपुर

27. भस्मे, डॉ. दिलीप, वर्ष- 2006, *विवेकी राय के साहित्य में ग्रामांचलिक जन-जीवन का चित्रण,* अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

28. भास्कर, डॉ. विमल, वर्ष- 1994, *हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी,* चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर

29. मदान, डॉ. इंद्रनाथ, वर्ष -1966, *आज का हिंदी उपन्यास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

30. मणरे, शहाजहान, वर्ष - 2009, *सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव,* श्रुति प्रकाशन, कोलकाता

31. मर्केंजी, जे.एस., वर्ष- 1962, *समाजदर्शन की रूपरेखा,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

32. मोहन, नरेंद्र, वर्ष- 2006, *धर्म और सांप्रदायिकता,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

33. मिश्र, रामदरश, वर्ष - 1982, *हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

34. मीणा, गंगा सहाय, वर्ष - 2018, *आदिवासी और हिंदी उपन्यास अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष,* अनन्या प्रकाशन, दिल्ली

35. यादव, डॉ, सरोज, वर्ष- 1996, *हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में राजनीतिक चेतना,* अन्यपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

36. राजा, राही मासूम, वर्ष - 1966, *आधा गाँव,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

37. रामबक्ष, वर्ष - 1982, *प्रेमचन्द और भारतीय किसान,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

38. राय, गोपाल, वर्ष- 2016, *हिंदी उपन्यास का इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

39. रायबोले, संतोष रघुनाथराव, वर्ष- 2016, *संजीव के कथा साहित्य में सर्वहारा समाज,* सारस्वत प्रकाशन अकोला

40. रावत, ज्ञाननेन्द्र, वर्ष- 2006, *औरत:अस्मिता और यथार्थ,* कान्ती बुक सेंटर प्रकाशन, दिल्ली

41. रेणु, फणीश्वरनाथ, वर्ष - 1954, *मैला आँचल,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

42. लोखण्डे, अरुणा, वर्ष- 1996, *समकालीन हिंदी साहित्य में जन चेतना,* विकास प्रकाशन, कानपुर

43. लोंढे मारूति, डॉ. रामचन्द्र, वर्ष- 2012, *संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व, ए.बी.एस. पब्लिकेशन,* वाराणसी

44. वाजपेयी, नंददुलारे, वर्ष- 2013, *आधुनिक साहित्य,* भारतीय भंडार, दिल्ली

45. विश्वज्योति, वर्ष- 2016, *कथाकार संजीव: मूल्यांकन के विविध आयाम,* वाड.मय बुक्स, अलीगढ़

46. शर्मा, रामविलास, वर्ष- 1967, *प्रेमचन्द और उनका युग,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

47. शर्मा, डॉ. सोहन लाल, वर्ष- 2011, *भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और हिंदी उपन्यास,* रचना प्रकाशन, जयपुर

48. सक्सेना, डॉ. आदर्श, वर्ष- 1971, *हिंदी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि,* सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर

49. संजीव, वर्ष- 2008, *संजीव की कथा यात्रा: पहला पड़ाव,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

50. संजीव, वर्ष- 2008, *संजीव की कथा यात्रा: दूसरा पड़ाव,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

51. संजीव, वर्ष- 2008, *संजीव की कथा यात्रा: तीसरा पड़ाव,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

52. सिंह, बच्चन, वर्ष- 1994, *आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

53. सिंह, प्रेम, वर्ष- 2008, *उदारीकरण की तानाशाही राजनीति पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव का विश्लेषण,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

54. सिंह, तेज, वर्ष- 2007, *दलित समाज और संस्कृति,* आधार प्रकाशन, पंचकूला

55. सिंह, महीप, वर्ष- 1977, *हिंदी उपन्यास समकालीन परिदृश्य,* लिपि प्रकाशन, दरियागंज

56. सिंह, डॉ. त्रिभुवन, वर्ष- 1965, *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद,* हिंदी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी

57. सुभाष, घना जी कुट्टे, वर्ष -1988, *हिंदी उपन्यासों में कृषक जीवन,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली

कोश

1. दास, श्यामसुंदर (संपा), वर्ष- 1968, *हिंदी शब्द कोश,* काशी प्रचारिणी सभा, दिल्ली
2. पाठक, राम प्रकाश, वर्ष- 2006, *मानक विशाल हिंदी शब्दकोश,* रायल बुक डिपो, दिल्ली
3. प्रसाद, कालिका, वर्ष- 2000, *बृहद हिंदी कोश,* ज्ञान मंडल प्रकाशन, वाराणसी

4. बरुआ, हेमचन्द्र (संग्रहकर्ता), वर्ष- 2000, *हेमकोश,* अजन्ता प्रकाशन, दिल्ली
5. बाहरी, हरदेव, वर्ष- 2009, *हिंदी शब्द कोश,* राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
6. वर्मा, रामचंद्र (संपा), वर्ष- 1966, *लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

पत्र-पत्रिकाएँ

1. जनकृति, आनलाइन पत्रिका, वर्धा
2. जनसत्ता, आनलाइन पत्रिका, दिल्ली
3. प्रवासनामा, उत्तर प्रदेश, पाक्षिक पत्रिका
4. हंस, मासिक, दिल्ली

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम: विनीता देवी

शिक्षा: एम.ए. (हिंदी) बी. एड

विभाग: हिंदी

लघु शोध-प्रबंध का शीर्षक: "संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में अभिव्यक्त यथार्थ-बोध"

प्रवेश की तिथि: 16.07.2018

शोध प्रस्ताव की संस्तुति

(1) पंजीयन संख्या: 18/M.Phil/HND/01

(2) पंजीकरण तिथि: 24.05.2019

अध्यक्ष

हिंदी विभाग

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक

शोध निर्देशक

हिंदी विभाग

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक